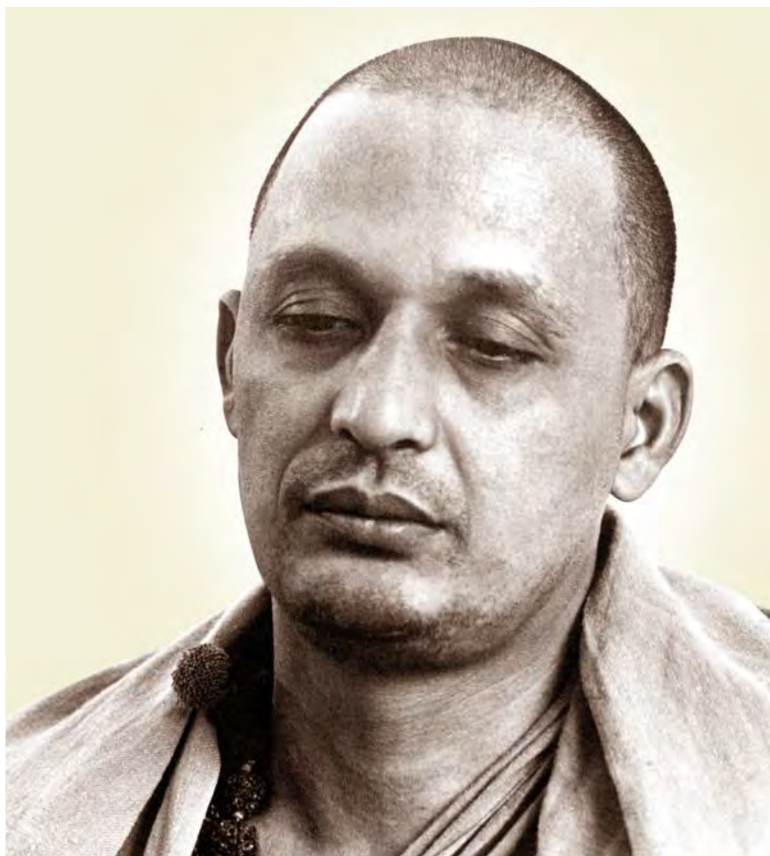
स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन 2013

BIHAR YOGA

अजपा जप एवं चिदाकाश धारणा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

अजपा जप एवं
चिदाकाश धारणा



WORLD YOGA CONVENTION 2013
GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA
23rd–27th October 2013

अजपा जप एवं चिदाकाश धारणा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

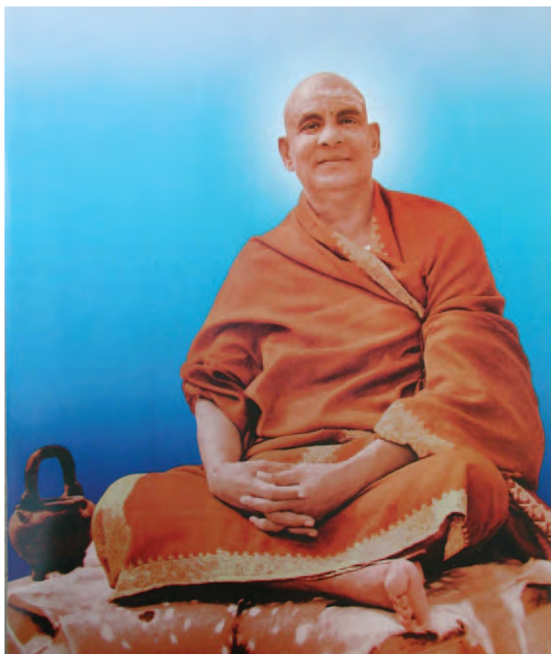


योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

बिहार योग विद्यालय द्वारा	*प्रथम प्रकाशन 1971*
	पुनर्मुद्रण 1972, 1973, 1974, 1975, 1976, 1977, 1978, 1992
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा	*पुनर्मुद्रण 2012*

प्रकाशक एवं वितरक–योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक–भार्गव ऑफसेट्स,
मच्छोदरी, वाराणसी

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

विषय-सूची

प्रस्तावना

आज सारा मानव-समाज जिस अमूल्य निधि की प्राप्ति के लिये तड़प रहा है, वह है मानसिक शान्ति। मानसिक शान्ति कोई बाह्य वस्तु नहीं है, इसकी प्राप्ति धन से नहीं हो सकती। शान्ति वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है, जिसने अपने अहं का नाश कर लिया है, अपनी इच्छाओं का अंत कर डाला है और इस भौतिक पंच-तत्त्व की रचना को समझ लिया है। जिसका यह विवेक जागृत हो गया है कि नाम और रूप से भी परे एक शाश्वत सत्य है, ब्रह्म है, आत्मन् है, असीम सत्ता है, वही मानसिक शान्ति प्राप्त कर सकता है।

इस मानसिक स्थिति के बिना आध्यात्मिक विकास नहीं हो सकता, वैराग्य भाव नहीं आ सकता, आत्मशक्ति का जागरण नहीं हो सकता है। आत्मशक्ति के जागरण से व्यक्ति पर सुख-दुःख, मान-सम्मान, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिए हमें उपयुक्त आध्यात्मिक साधना के द्वारा शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से उस स्थिति को प्राप्त करना होगा। यही मानव जीवन का परम लक्ष्य है।

मानव जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए योग का आश्रय लेना ही होगा। योग के अनेक अंग तथा उपांग हैं, इनमें से सबसे सरल, परन्तु उच्च साधना है अजपा जप, जिसके द्वारा मनुष्य ईश्वर की अनुभूति प्राप्त कर सकता है, समाधि की अवस्था प्राप्त कर सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु पुस्तक में हमने पूरी विस्तृत चर्चा की है।

इस पुस्तक में हमने चेतना के विकास के स्तर पर अजपा जप की छः अवस्थाओं का व्यावहारिक कक्षाओं के रूप में वर्णन किया है। साथ-ही-साथ अजपा से सम्बन्धित विभिन्न विषयों का वर्णन किया है, जो कि क्रिया योग एवं उच्च साधनाओं के अभ्यास में आवश्यक हैं। चिदाकाश धारणा

अजपा के अभ्यास से मिलती-जुलती क्रिया है, जिसका वर्णन भी संक्षिप्त रूप में किया गया है।

अजपा से सम्बन्धित कड़ियों के साथ-ही-साथ अजपा जप द्वारा रोगों का उपचार तथा पाशविक संस्कारों को दूर करने का अभ्यास बतलाया गया है।

अजपा-जप

उपनिषद् अति प्राचीन ग्रंथ है। अजपा की साधना भी उतनी ही अधिक प्राचीन है। योगशिक्षा आदि यौगिक उपनिषदों में ऐसे गद्यांश एवं पद्यांश प्राप्त होते हैं, जिनके अनुसार श्वास 'सो' की ध्वनि के साथ भीतर जाती है एवं 'हं' की ध्वनि के साथ बाहर आती है। यह अजपा गायत्री है। जीव निरंतर इसकी पुनरावृत्ति करता रहता है।

नारद के द्वारा वाल्मीकि जी 'उल्टे नाम' में दीक्षित हुए थे। यही अजपा है। राधा स्वामी, कबीर आदि निर्गुण पंथ के अनुयायी आज भी अजपा का अभ्यास करते हैं। गाँधीजी ने भी अपनी पुस्तक में लिखा है कि नाम का उच्चारण मुख से नहीं, वरन् हृदय से होना चाहिए। जब नामोच्चारण मुख से होता है, तब उसे जप कहते हैं, जब वह हृदय से हो तब उसे अजपा कहते हैं।

अजपा एक महत्त्वपूर्ण साधना है। इसके माध्यम से समाधि का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। अन्य यौगिक विधियों द्वारा समाधि प्राप्ति के लिये श्वास रोककर कुम्भक लगाना पड़ता है। इस प्रकार श्वास पर नियंत्रण प्राप्त किया जाता है, परन्तु अजपा के निरन्तर अभ्यास में श्वास स्वाभाविक होती है। समाधि की अवस्था में इसमें कोई अन्तर नहीं आता।

अजपा क्रियायोग का एक अंग है। पातंजल योग सूत्र के अनुसार तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान क्रियायोग है। संस्कृत के अनुसार इस स्तर के अजपा को 'विलोम अजपा' कहते हैं। इस अजपा के संदर्भ में कबीर ने कहा है– 'मुझे चेतना की चतुर्थ अवस्था का अनुभव हो रहा है।' पुन: वे कहते हैं– 'हं' के प्रति चेतना नाभि चक्र से प्रारंभ होती है। बाहर आकर वह विपरीत हो जाती है। इस प्रकार हम नाभि चक्र से 'हं' की ध्वनि उत्पन्न करते हैं। उसकी पूर्णता के पश्चात् उसके विपरीत 'सो' की ध्वनि उत्पन्न होती है। अब वह

ध्वनि 'हं सो' हो जाती है। योग के कुछ अभ्यासों के द्वारा मनुष्य अंतर्मुखी हो जाता है, उसे श्वास पर नियंत्रण प्राप्त होता है। इसमें कठिनाई यह है कि यदि अभ्यासी के फेफड़े मजबूत न हों, तो कुछ देर के ध्यान के उपरांत वह बहिर्मुखी हो जाता है। यह कठिनाई अधिकतर लोगों को होती है। अजपा के अभ्यास से यह समस्या सुलझ जाती है। द्वितीय महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अजपा एक पूर्ण साधना है।

जिन्होंने पातंजल योग सूत्र का अध्ययन किया होगा, वे इस बात से अवगत होंगे कि सर्वप्रथम स्थूल वस्तु पर ध्यान करना चाहिए। खुले नेत्रों से स्थूल वस्तु पर चित्त को एकाग्र करने के बाद बंद नेत्रों से उसी वस्तु पर ध्यानाभ्यास करते हैं। यह सूक्ष्म वस्तु पर ध्यान का अभ्यास है। सूक्ष्म वस्तु पर ध्यान की पूर्णता के पश्चात् उसकी सामान्य उपस्थिति पर ध्यान करना चाहिए। जैसे ऊँची कक्षा में पहुँचने पर छोटी कक्षा की पुस्तकों को छोड़ देते हैं; ठीक इसी प्रकार सफलता प्राप्ति पर प्रारंभिक योगाभ्यासों का त्याग करना होता है। साधना में अच्छी उन्नति होने पर प्रारंभ के अभ्यासों को छोड़ते जाना चाहिए। अजपा के संदर्भ में भगवत् गीता में स्पष्टत: कहा गया है–

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणा:॥

कुछ अभ्यासी प्राण का योग अपान से करते हैं; अन्य अपान का प्राण में योग करते हैं एवं कुछ अन्य प्राण का योग प्राण से करते हैं। प्राण भीतर जाने वाली श्वास है एवं अपान नि:श्वास है। 'सो' प्राण का एवं 'हं' अपान का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार कुछ अभ्यासी प्राण को अपान में मिलाते हैं, अर्थात् 'सो' का योग 'हं' से करते हैं, जिससे 'सोऽहं' बन जाता है। अन्य अभ्यासी अपान का मेल प्राण से करते हैं, अर्थात् वे 'हं' से युक्त करते हैं, जिससे 'हं सो' उत्पन्न होता है। कुछ अन्य साधक प्राण का योग प्राण से करते हैं। इस अभ्यास का विवरण आगे दिया जायेगा।

गीता में अजपा के संदर्भ में एक और उल्लेख दिया गया है। कहा गया है– 'नासिका प्रदेश में प्राण एवं अपान में समानता रखते हुए अन्दर जाने वाली एवं बाहर आने वाली श्वास को नासिका छिद्रों में समय एवं लम्बाई की दृष्टि से संतुलित रखें। समय एवं लम्बाई में समानता होनी चाहिए।' इस प्रकार अजपा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण साधना है। इसका उल्लेख शास्त्रों में भी

किया गया है। यह साधना अपने आप में पूर्ण है। इसके माध्यम से गुरु के निर्देश बिना भी आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश किया जा सकता है।

योग के छः सोपान हैं– सवितर्क समाधि, निर्वितर्क समाधि, सविचार एवं निर्विचार समाधि, आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगत समाधि। आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रत्येक शिष्य को अपने लिए इस बात का ज्ञान रखना चाहिए कि कौन-सा प्रथम सोपान है एवं कौन-सा द्वितीय। ध्यान के अधिकांश यौगिक अभ्यास अजपा की भाँति पूर्ण नहीं हैं। अजपा के छः स्तर हैं। यदि आप अजपा के लिए 'सोऽहं' को ग्रहण करेंगे, तो इसके द्वारा ही छः सोपान में पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं।

त्राटक के अभ्यास की सफलता पर व्यक्ति विशेष ध्यान की वस्तु का अन्तर्दर्शन करता है। परन्तु इसके बाद मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इसलिए योग के अन्य अभ्यासों के द्वारा आप स्वयं समाधि अवस्था तक नहीं पहुँच सकते। द्वितीय अभ्यास के निर्देश के लिए आपको गुरु की आवश्यकता होगी। अजपा की साधना के लिए गुरु की आवश्यकता नहीं है।

कहा गया है कि व्यक्ति को 'अनाहत जप' करना चाहिए, अर्थात् अनन्त जप करना चाहिए। अनन्तता तक उसका विस्तार होना चाहिए। ऐसा मन्त्र हमें ज्ञात नहीं है। अतः मन्त्र की पुनरावृत्ति की ऐसी विधि होनी चाहिए कि मन्त्र का अन्त न हो। अजपा के अभ्यास में ऐसा किया जा सकता है, जबकि मन्त्र का योग श्वास के साथ किया जाता है। इस प्रकार उसकी चेतना पूरे समय बनी रहती है।

अजपा के वास्तविक अभ्यास की जानकारी देने के पूर्व में एक बात बतला देना चाहता हूँ। यदि हाथ में चोट लग जाए और मैं उस विषय में प्रश्न करूँ, तो आप सकारात्मक उत्तर देंगे। परन्तु यदि मैं प्रश्न करूँ कि दर्द किस स्थान पर है? तब आप उत्तर देंगे कि हाथ में है। यह दर्द का स्थान है। इसी भाँति चेतना को विशेष स्थान में स्थिर करने की विशेष प्रक्रिया है।

मैं आपसे प्रश्न करता हूँ कि आपकी चेतना कहाँ है। कुछ मिनट के लिए आप विचार कीजिए कि आप कहाँ हैं। आप नहीं जानते कि मैं कहाँ हूँ। इस समय आपकी चेतना बहिर्मुखी एवं बिखरी हुई है। परन्तु शरीर के किसी केन्द्र पर आप उसे केन्द्रित कर सकते हैं।

मान लीजिए, ध्यान के समय एक सेकेण्ड के लिए आप प्रकाश का दर्शन मानस-पटल पर करते हैं। यौगिक भाषा में यह 'चेतना को स्थापित करना

या निर्दिष्ट करना' कहलाता है। आध्यात्मिक उन्नति के लिए यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रक्रिया द्वारा योगी अपनी चेतना को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं।

सामान्यत: हम इस बात से अनभिज्ञ हैं कि हमारा सूक्ष्म शरीर कहाँ है। अजपा के अभ्यास द्वारा आप यह ज्ञात करने में समर्थ होंगे कि आपकी चेतना कहाँ है।

दो पक्षी हैं। एक सफेद रंग का है एवं एक काले रंग का है। दोनों दो रस्सियों द्वारा खूँटी से बँधे हैं। परिणामत: वे उड़कर भी उसी स्थान पर वापस आ जाते हैं। अंत में थककर शांतिपूर्वक खूँटी के पास सो जाते हैं।

उपर्युक्त उदाहरण इड़ा एवं पिंगला नाड़ी का है। उन पक्षियों की भाँति ये भी पक्षी हैं। दाहिनी नासिका छिद्र का प्रवाह पिंगला या सूर्य नाड़ी है तथा बायीं नासिका का प्रवाह इड़ा या चन्द्र नाड़ी है। इन दोनों का क्रमिक प्रवाह व्यक्ति को उसकी आन्तरिक चेतना से अलग रखता है। जब तक एक के पश्चात् दूसरी का प्रवाह होगा, तब तक समाधि की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब ये दोनों पक्षी थककर आत्मा या हृदय केन्द्र में सुप्त हो जाते हैं, अर्थात् सुषुम्ना जाग्रत हो जाती है, तब ध्यान की प्रक्रिया सहज हो जाती है।

स्वर योग के अनुसार जब दोनों नासिका छिद्रों में समान प्रवाह होता है, तब सुषुम्ना का प्रवाह माना जाता है। उस समय सांसारिक कर्मों का त्याग कर ध्यान करना चाहिए। यह सामान्य अनुभव की बात है कि कभी-कभी ध्यान बहुत अच्छा लगता है। इसका कारण यही है कि उस समय सम्पूर्ण संस्थानों में एकरूपता होती है।

विचारों की शृंखला को रोकने के लिए उनका अवलोकन करना चाहिए। चेतनतापूर्वक उन्हें देखना चाहिए। अजपा के समय इस बात के प्रति पूर्णत: एवं अखण्ड रूप से जागरूक रहिये कि आप क्या कर रहे हैं। अविरल तैलधारावत् आपकी चेतना बनी रहे। यह स्वाध्याय है। यहाँ स्वाध्याय का अर्थ आध्यात्मिक पुस्तकों का अध्ययन नहीं है। अपने कार्यों के प्रति निरंतर जागरूकता ही स्वाध्याय है।

अजपा के संदर्भ में द्वितीय महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ध्यान के केन्द्र आज्ञा चक्र, अनाहत चक्र या शरीर के अन्य केन्द्र पर चेतना स्थिर रखी जाये। इसे ईश्वर प्रणिधान या वस्तुनिष्ठ ध्यान के लिए चयन किए गए किसी केन्द्र विशेष पर मन को स्थिर करना कहते हैं।

इस प्रकार अजपा में ये तीन बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं—तपस्या या शरीर पर नियन्त्रण, स्वाध्याय या पूरे समय आत्मावलोकन तथा ईश्वर प्रणिधान या ध्यान के केन्द्र पर मन की स्थिरता। अजपा के अभ्यास में ये तीन बातें स्मरणीय हैं–1. गहरी श्वसन-क्रिया, 2. विश्रांति और 3. पूर्ण जागरूकता। पर कोई भी श्वास चेतना के परे न हो। मात्र प्राकृतिक श्वसन न हो, वरन् प्रत्येक आने-जाने वाली श्वास पर अखण्ड चेतना बनी रहे।

इस प्रकार श्वसन प्रक्रिया में मन्त्रों का योग ही अजपा है। किसी भी आसन में भूमि पर, कुर्सी पर या किसी भी स्थान पर इसका अभ्यास किया जा सकता है। पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में अभ्यास कर सकते हैं।

अजपा में महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि आप सर्वप्रथम भीतर जाने वाली एवं बाहर आने वाली श्वास के प्रति सचेत रहिए। वह स्वाभाविक क्रिया होनी चाहिए। आप रात्रि में नैसर्गिक रूप से श्वसन करते हैं। यह अजपा नहीं है। सचेत होकर आप आने-जाने वाली श्वास को देखिए। द्रष्टा की भाँति आने-जाने वाली श्वास पर अखण्ड चेतना बनाए रखिए।

आप यह भी अवलोकन कीजिए कि श्वास कहाँ तक जाती है। भीतर जाने वाली श्वास नाभि तक जाती है। बाहर आने वाली श्वास नाभि से आती है।

लेटकर अनुभव कीजिए कि आप सो रहे हैं। गहरी नींद में गहरी श्वास लेने वाले व्यक्ति की भाँति श्वसन क्रिया कीजिए। कुछ ही दिनों के अभ्यासोपरांत आपकी श्वसन क्रिया विधिवत्, पूर्ण एवं संतुलित हो जायेगी। श्वास-प्रश्वास की दर प्रति मिनट 15 बार है। अजपा में इच्छित रूप से लम्बी एवं गहरी श्वास ली जा सकती है, जैसे कि आप खर्राटे लेते समय करते हैं। इस क्रिया से आयु-वृद्धि होती है।

अब हम अजपा की विधि या उसके कलात्मक पक्ष की चर्चा करेंगे। अजपा की विधि कठिन नहीं है। कठिनाई केवल तप या शरीर पर नियंत्रण की है। एक ही आसन में बैठना होगा। शरीर में किसी प्रकार की गति न होने पाये एवं मन इधर-उधर न भटके। यह मन को मारना नहीं है, वरन् नियंत्रित करना है। प्रतिदिन यदि 45 मिनट अजपा करने का विचार करें, तो एक दिन आप ऐसा करेंगे, परन्तु दूसरे दिन धैर्य खो देंगे एवं तीसरे दिन आपकी रुचि समाप्त हो जायेगी, चतुर्थ दिवस सब कुछ समाप्त हो जाएगा। ऐसा नहीं होना चाहिए। अपने निश्चय को स्थिर रखिये और धैर्यपूर्वक कम-से-कम एक माह तक निरन्तर अभ्यास कीजिए।

किसी सुखद आसन में बैठिए। शरीर को शिथिल कीजिए। गहरी श्वास लीजिए। भीतर जाने वाली श्वास के साथ 'सो' एवं बाहर आने वाली श्वास के साथ 'हं' शब्द का योग कीजिए। अनुभव कीजिए कि आप 'सोऽहं' का अंतर्दर्शन कर रहे हैं। 'सो' एवं 'हं' के मध्य कोई मानसिक विराम न हो। अखण्ड रूप में उन्हें देखते जाइए। 'हं' के उपरांत क्षणिक विराम के 'सो' के साथ श्वास लीजिए तथा 'हं' के साथ छोड़िए। यह 'सोऽहं' की एक आवृत्ति है। भीतर जाने वाली एवं बाहर आने वाली श्वास तथा 'सोऽहं' के प्रति चेतना निरन्तर बनी रहे।

कुछ कालोपरांत अजपा रोककर शून्य में प्रवेश कीजिए। भ्रूमध्य में चेतना को ले जाकर आज्ञा चक्र पर एकाग्र कीजिए। इच्छानुसार आप हृदय चक्र पर ध्यान कर सकते हैं। विचार रहित बनिए। किसी प्रकार का विचार न आने पाए। जो भी विचार आयें, उन्हें हटाते जाइए। एकमात्र शून्य का ध्यान कीजिए। ध्यान के केन्द्र पर वृत्ति को देखना है। कुछ मिनट यह अभ्यास कीजिए, तत्पश्चात् पुन: अजपा आरम्भ कीजिए।

अजपा में सर्वप्रथम श्वास की दो धाराओं तथा उनसे युक्त 'सोऽहं' पर ध्यान कीजिए। श्वसन प्रक्रिया के साथ आप किसी भी मन्त्र का योग कर सकते हैं।

'सोऽहं' मन्त्र के सम्बन्ध में कुछ भ्रम है। 'सोऽहं' का अर्थ 'मैं वही हूँ' नहीं है। 'सो' भीतर जाने वाली श्वास से उत्पन्न होने वाली ध्वनि है। इसी प्रकार प्रश्वास से 'हं' की ध्वनि उत्पन्न होती है। यह 'अहं ब्रह्म' उपासना कदापि नहीं है। 'सोऽहं' केवल दो श्वास के आन्तरिक वृत्त के अंतर्दर्शन को इंगित करता है। 'सोऽहं' के शाब्दिक अर्थ का विचार नहीं करना चाहिए।

प्रथम सोपान

ध्यान के किसी आसन में बैठ जाइए।

अजपा का अभ्यास बैठ कर या लेट कर, कैसे भी किया जा सकता है; परन्तु योग के विद्यार्थी को कोई एक आसन चुन लेना उपयुक्त होगा।

आँखें बन्द कर लीजिए।

कुछ मिनट के लिए शारीरिक एवं मानसिक रूप से शिथिल हो जाइए।

स्वयं को जितना सम्भव हो, हल्का एवं शिथिल कीजिए।

कुछ समय के लिए समस्त चिन्ताओं एवं समस्याओं को भूल जाइए।

शान्ति, सुख एवं आनन्द का अनुभव कीजिए।
अभ्यास के पूर्व पूर्णरूपेण तनावरहित बन जाइए।
अनुभव कीजिए कि आप आरामपूर्वक बैठे हैं।
पूर्व निर्दिष्ट विधि से श्वसन कीजिए।
प्रत्येक आने-जाने वाली श्वास पर ध्यान रखिए।
भीतर जाने वाली श्वास नाभि तक जाती है तथा बाहर आने वाली श्वास नाभि प्रदेश से आती है।
स्वाभाविक रूप से नहीं, बल्कि सचेत होकर गहरी श्वास लीजिए।
श्वसन के समय कोई ध्वनि उत्पन्न न कीजिए।
श्वास के दो प्रवाहों का अनुभव कीजिए।
प्रत्येक श्वास के प्रति जागरूक रहिए।
श्वास-प्रश्वास के साथ 'सोऽहं' का योग कीजिए।
'सोऽहं' इसके समकालीन हो।
प्राण एवं मंत्र पर अखण्ड चेतना बनाए रखिए।
अब भृकुटि, आज्ञा चक्र या हृदय चक्र पर चेतना को केन्द्रित कीजिए।
किसी एक चक्र का ध्यान कीजिए।
विचार रोकिए और मानसिक शून्यता का निर्माण कीजिए।
सब विचारों को एक ओर रखिए।
विशेष केन्द्र पर सामान्य चेतना बनी रहे।
सचेत होकर श्वास लीजिए एवं छोड़िए।
श्वास-प्रश्वास के साथ पूर्णतः 'सोऽहं' प्रारंभ कीजिए।
कुछ समय तक यह अभ्यास जारी रखिए।

द्वितीय सोपान

प्रथम अभ्यास में आपने भीतर जाने वाली श्वास के साथ 'सो' तथा बाहर आने वाली श्वास के साथ 'हं' का दर्शन किया।
द्वितीय अभ्यास में इस क्रिया को विपरीत कर दीजिए।
रेचक के साथ 'हं' का अनुभव कीजिए और पूरक के साथ 'सो' का अनुभव कीजिए।
'हं' एवं 'सो' के मध्य विराम न हो। 'हं-सो' के उपरान्त क्षणिक विराम हो। सदैव 'हं-सो' पर अपनी चेतना को बनाए रखिए।

‘सो’ भीतर जाने वाली श्वास तरंग का अन्तरावलोकन है एवं ‘हं’ बाहर आने वाली श्वास का अन्तरावलोकन है।
‘हं-सो’ के अजपा के पश्चात् शून्यता का निर्माण कीजिए।
किसी प्रकार का विचार न कीजिए।
आने-जाने वाले विचारों के प्रति सजग रहिए।
आज्ञा या अनाहत चक्र पर चेतना को ले जाइए।
ध्यान के केन्द्र पर पूर्ण एकाग्रता रहे।
केन्द्र बिन्दु पर किसी प्रकार का दबाव न पड़े।
क्रिया स्वाभाविक हो, इसका हमेशा ख्याल रखें।
सामान्य रूप से अपने मन को वहाँ एकाग्र कीजिए।
श्वास की गहराई, विश्रांति, पूर्ण चेतना आदि प्रथम अभ्यास की भाँति ही रहेंगे। इस ‘हं-सो’ के अभ्यास में ये बातें ‘सो-हं’ के अभ्यास की तरह ही होंगी।
‘हं-सो’ का अभ्यास एक माह किया जा सकता है।
इसमें सफलता प्राप्त करने के बाद तृतीय अभ्यास प्रारंभ कीजिए।

तृतीय सोपान

अजपा के प्रथम अभ्यास में आपने अपनी चेतना को ‘सोऽहं’ का रूप प्रदान किया था।
द्वितीय अभ्यास में इसके विपरीत ‘हं-सो’ में परिणित किया।
अब तृतीय अभ्यास प्रारंभ कीजिए।
मानसिक रूप से शिथिल हो जाइए।
शरीर के किसी भी अंग में तनाव नहीं होना चाहिये।
अपने को पूर्ण रूप से शिथिल करने की कोशिश कीजिये।
सुख, शांति एवं आनन्द का अनुभव कीजिए।
स्वत: निर्देश या ‘मैं’ की चेतना के द्वारा विश्रांति में सफलता प्राप्त की जा सकती है।
यदि अत्यधिक तनाव न हो तो एक अन्य विधि ‘गिनती गिनने’ की है।
अंदर जाने वाली श्वास एवं बाहर आने वाली श्वास के साथ एक गिनिए।
भीतर जाने वाली एवं बाहर आने वाली श्वास के साथ दो गिनिए।
इसी प्रकार चार तक गिनिए। पाँचवें अंक के समय सतर्क हो जाइए।

कोई भी श्वास आपकी जानकारी के बिना खाली न जाने पाये।
समष्टिगत चेतना का पोषण कीजिए। चेतना को एकत्र कीजिए।
अनुभव कीजिए कि आप निश्चित रूप से पाँच गिन रहे हैं।
मानसिक रूप से कहिए–'मैं भीतर जाने वाली श्वास के साथ पाँच एवं बाहर आने वाली श्वास के साथ पाँच की गिनती के प्रति चैतन्य हूँ।'
इसी प्रकार नौ तक गिनती गिनिए। दस की गिनती में सचेत हो जाइए।
दस की संख्या पर पूर्णतः जागरूक हो जाइए।
कुछ समय तक यह क्रिया कीजिए।
अब लययुक्त गहरी श्वास लीजिए।
लम्बी, सहज एवं आरामपूर्वक श्वास लीजिए।
श्वसन की पूर्ण प्रक्रिया में सचेत रहिए।
'सो-हं' या 'हं-सो' का अंतरावलोकन न कीजिए, वरन् भीतर जाने वाली एवं बाहर आने वाली श्वास के साथ अलग-अलग क्रमशः 'सो' एवं 'हं' का अंतरावलोकन कीजिए।
'सो-हं' या 'हं-सो' का संयुक्त रूप से ध्यान न कीजिए।
पूरक के साथ 'सो' एवं रेचक के साथ 'हं' का अनुभव कीजिए।
इस अभ्यास की पूर्णता पर मानसिक शून्यता का निर्माण कीजिए। ध्यान के किसी भी केन्द्र पर अपनी चेतना को केन्द्रित कीजिए। पुनः चेतनता के साथ श्वसन क्रिया प्रारंभ कीजिए और व्यक्तिगत 'सो' एवं 'हं' का ध्यान एक माह तक या उससे अधिक कीजिए।

चतुर्थ सोपान

किसी स्थिर आसन में बैठिए। नेत्रों को बंद कीजिए।
आत्म निर्देशन, आत्म-चेतना तथा सुख-शांति एवं आनन्द का अनुभव करते हुए मानसिक रूप से तनावरहित स्थिति में आ जाइए।
लययुक्त श्वसन प्रारंभ कीजिए।
नाभि तक श्वास लीजिए एवं नाभि से श्वास छोड़िए।
नाभि तक जाते समय एवं नाभि प्रदेश से बाहर आते समय श्वास जिन केन्द्रों से होकर आती-जाती है, उन पर अपनी चेतना को ले जाइए।
श्वसन लययुक्त, ध्वनिरहित, सुखद एवं आरामदायक हो।
पूर्ण चेतना बनाए रखिए।

भीतर जाने वाली श्वास के साथ 'सो' एवं बाहर आने वाली श्वास के साथ 'हं' का योग कीजिए। चेतना निरंतर बनी रहे।
चेतना का अखंड रूप – 'सो-हं-हं-सो' बना रहे।
'सो' का विलय 'हं' में एवं 'हं' का विलय 'सो' में हो।
इस प्रकार अनन्त वृत्त निर्मित हो।
'हं' की ध्वनि तरंग को दीर्घ कीजिए एवं भीतर जाने वाली 'सो' की ध्वनि तरंग से उसका योग कीजिए।
'सो' की ध्वनि तरंग को दीर्घ कर 'हं' की ध्वनि तरंग से युक्त कीजिए।
'हं' के अंतिम भाग का योग 'सो' के प्रारंभिक भाग से होता है।
इस प्रकार 'सो-हं' – 'हं-सो' का अखण्ड वृत्त निर्मित होता है।
'सो-हं' एवं 'हं-सो' का निरन्तर अंतरावलोकन होना चाहिए।
'सो-हं' या 'हं-सो' में से किसी के मध्य की शृंखला न टूटे।
अब यह अभ्यास बन्द कीजिए।
विचार रहित व शून्यता का निर्माण कीजिए।
ध्यान के किसी भी केन्द्र पर चेतना को केन्द्रित कीजिए।
कोई विचार न आने पाये। कुछ समय के उपरांत पुन: 'सो-हं' – 'हं-सो' अखण्ड वृत्त का निर्माण आरम्भ कीजिए।
आधे या एक घण्टे के अभ्यास के अन्त में आराम एवं शान्ति की कल्पना चरम बिन्दु तक कीजिए। इसका अनुभव मानसिक रूप से कीजिए।
'आनन्दं, परमं, सुखं, शांति, मंगलम्।'
अजपा के सभी अभ्यास मौखिक नहीं, वरन् मानसिक हैं।

पंचम सोपान

अजपा के चार अभ्यासों का वर्णन किया गया।
अब हम पाँचवें अभ्यास का विवरण देंगे, जो अपेक्षाकृत कठिन है तथा जिसके लिए साधक में महान् काल्पनिक शक्ति होनी चाहिए।
इस अभ्यास में चेतना को मेरुदण्ड में घुमाया जाता है।
एकाग्रता एवं ध्यान की प्रक्रिया के दो तत्त्व हैं – 1. बाह्य चेतना का विनाश एवं 2. अपने में निहित शान्त, निश्चल आत्मा का दर्शन।
यदि लालटेन या किसी लैम्प का काँच धुएँ से परिपूर्ण हो तो वह पूर्ण प्रकाश नहीं दे सकता। काँच की पूर्ण शुद्धता पर ही उसका प्रकाश पूर्णत:

प्राप्त किया जा सकता है। इसी भाँति आत्मा का प्रकाश या शक्ति हमारे अन्दर है, परन्तु दैनिक जीवन में उसका प्रकाशन नहीं हो सकता।

इसका कारण विचार, सिद्धान्तों की बाधाएँ, मन की चंचलता, विह्वलता, बिखरी हुई चेतना आदि हैं।

इन्द्रिय चेतना को नष्ट करने एवं आत्म-चेतना की जागृति में ध्यान सहायक है। उससे मन की अशुद्धियाँ नष्ट हो जाती हैं।

ध्यान की विभिन्न पद्धतियाँ हैं।

प्रथम का सम्बन्ध शारीरिक समूह से, द्वितीय का सम्बन्ध मन के समूह या चिन्तन से, तृतीय का सम्बन्ध बौद्धिक समूह से एवं चतुर्थ प्रक्रिया का सम्बन्ध चेतना के उच्च क्षेत्रों से है।

जब शारीरिक चेतना, मानसिक चेतना, बौद्धिक जागरूकता और अन्त में अहं के अस्तित्व का पूर्णत: लोप हो जाता है, तब प्रकाश का साक्षात्कार होता है।

जब तक आप शरीर, मन तथा बुद्धि से ऊपर नहीं उठेंगे, तब तक आपको धैर्य एवं शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

अजपा के विभिन्न अभ्यासों का उद्देश्य इसी की प्राप्ति करना है।

उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए व्यक्ति को प्राथमिक, माध्यमिक, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय की शिक्षा क्रमश: प्राप्त करनी पड़ती है। इसी भाँति ध्यान के भी चार सोपान हैं।

प्रथम है विश्रांतिकरण, द्वितीय है जागरूकता, तृतीय है एक हो जाना तथा चतुर्थ है भूल जाना।

अजपा के पूर्व वर्णित अभ्यास में इसके विषय में समझाया जा चुका है।

अब हम अजपा के पंचम अभ्यास में आते हैं, जो उच्च अभ्यास है।

लययुक्त श्वसन अजपा के अभ्यास की प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है।

द्वितीय महत्त्वपूर्ण विषय चेतनता है।

ध्यान में प्रत्येक प्रक्रिया के प्रति आपको सचेत रहना पड़ेगा।

यदि ध्यान के समय आप यह भूल जायें कि मैं ध्यान कर रहा हूँ, तो आपको कभी सफलता नहीं मिल सकती। ध्यान के समय तन्द्रा आती है।

ध्यान के प्रत्येक अभ्यासी के सम्मुख यह समस्या आती है।

मान लीजिए, आप किसी विषय पर 15 मिनट तक विचार करते हैं।

समस्या पर चिन्तन करते समय आपको इस बात का ध्यान नहीं रहता कि

आप विशेष विषय पर चिन्तन कर रहे हैं। चिन्तन की समाप्ति पर ही आपका ध्यान इस ओर जाता है कि मैं इतनी देर तक किसी विषय पर विचार कर रहा था। इसे ध्यान नहीं कहते।

ध्यान की प्रक्रिया में एकाग्रता नहीं, वरन् जागरूकता का विशेष महत्त्व है। इसीलिए मैं सदैव एक बात पर जोर देता हूँ – 'आप जो कुछ कर रहे हैं, उसके प्रति जागरूक रहिए।'

गिनती के प्रति चेतना को बनाए रखिए। श्वसन की प्रक्रिया के प्रति सचेत रहिए। संक्षेप में, पूर्णत: सजग एवं चैतन्य रहिए।

अखण्ड जागरूकता बनी रहे, उसे किसी भी भाँति खण्डित न होने दीजिए।

ध्यान में यदि आप एक, दो, तीन गिनती गिनते हैं, तो एक क्षण के लिए भी मन इधर-उधर न भटकने पाए।

मन भटकता है तो भटकने दीजिए, परन्तु आपको इस बात का ज्ञान रहे।

मन की प्रत्येक क्रिया के प्रति जागरूक रहें।

यदि आप एकाग्रता का अभ्यास कर रहे हैं, तो उसके प्रति चैतन्य रहिए।

निश्चित स्थान से हट जाना तथा भटकना मन का स्वभाव है।

अत: इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए, परन्तु मन के प्रत्येक कार्य के प्रति, उसकी वृत्तियों के प्रति सजग रहिए।

जब कभी आपकी चेतना, आपकी जागरूकता भटकती है, तब उसके प्रति सजग रहिए। मन का कोई भी कार्य ऐसा न हो जिस पर आपका ध्यान न हो। एकाग्रता की क्रिया में असावधान न रहिए।

ध्यान की क्रिया में यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं प्राथमिक है।

यही मूलभूत आधार है।

यदि इस महत्त्वपूर्ण विषय को भुला दें या उस पर ध्यान न दें तो सदियों के अभ्यास के उपरांत भी आपको ध्यान में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।

द्वितीय महत्त्वपूर्ण विषय है – मेरुदण्ड में लययुक्त श्वसन तथा उसके प्रति सजगता।

'सो' एवं 'हं' शब्द की तरंगों की मेरुदण्ड में आवृत्ति एवं पुनरावृत्ति तृतीय महत्त्वपूर्ण विषय है।

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है – 'यदि आप मन पर नियंत्रण करना चाहेंगे तो वह अधिक चंचल होगा, परन्तु यदि आप केवल द्रष्टा की भाँति उसके

क्रियाकलापों का अवलोकन करेंगे तो वह शान्त हो जाएगा। इसी कारण मैंने मन पर दबाव डालने के लिए नहीं, वरन् केवल उसके कार्यों के प्रति सतर्क रहने के लिए कहा है।

लययुक्त श्वास-प्रश्वास के साथ बीज मन्त्र का योग कर आपने अभ्यास किया तथा अन्त में अस्थायी शून्यता का निर्माण कर अभ्यास किया।

पाँचवें स्तर पर प्रारम्भ में आपको अनेक कल्पनाओं का सहारा लेना पड़ेगा। बाद में यह स्वाभाविक प्रक्रिया में परिवर्तित हो जाएगा।

पूर्व के अभ्यास में आपने नाभि से आने वाली तथा नाभि तक जाने वाली श्वास का अन्तर्दर्शन किया। अब इस क्रिया में परिवर्तन लाना है।

अपनी चेतना को मेरुदण्ड के छ: चक्रों में घुमाइए।

यदि हम नीचे से ऊपर की ओर जाएँ, तो छ: चक्र क्रमश: इस प्रकार हैं–1. मूलाधार, 2. स्वाधिष्ठान, 3. मणिपुर, 4. अनाहत, 5. विशुद्धि एवं 6. आज्ञा।

सर्वप्रथम आप स्वयं को शरीरिक तथा मानसिक रूप से शिथिल कीजिए।

किसी सुखद आसन में बैठिए। गहरी-लययुक्त श्वसन क्रिया कीजिए। उस पर पूर्णत: सजगता बनाये रखिए।

अब श्वास को आज्ञा चक्र से नीचे विशुद्धि, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान, मूलाधार तक ले जाइए।

श्वास के साथ अपनी चेतना को भी उन चक्रों में घुमाइए। इस प्रकार चेतना मेरुदण्ड में आज्ञा चक्र से प्रारम्भ होकर नीचे मूलाधार तक जाएगी।

कुछ अवधि के लिए अपनी चेतना को मूलाधार पर केन्द्रित कीजिए।

मेरुदण्ड के मूल में एक उल्टा त्रिभुज है। इसमें सुषुप्तावस्था में कुण्डलिनी शक्ति का वास है। यह शक्ति सर्प के रूप में कुण्डली मारे सोई हुई है, जिसका सिर नीचे की ओर तथा पूँछ ऊपर की ओर है।

कुछ क्षण के लिए इस कुण्डलिनी पर ध्यान कीजिए।

अब मूलाधार से श्वास लेते हुए मेरुदण्ड में स्थित चक्रों से होकर ऊपर अपनी चेतना को ले जाइए। इस स्वाभाविक श्वसन चेतना के साथ पूरक एवं रेचक करते हुए उसमें 'सोहं' का योग कीजिए।

चेतना का मार्ग मेरुदण्ड है तथा उसका केन्द्र मूलाधार चक्र पर स्थित त्रिभुज एवं कुण्डलिनी है। भीतर जाने वाली श्वास के समय 'सो' का योग

कीजिए। मूलाधार से इसकी तरंग को मेरुदण्ड से होते हुए आज्ञा चक्र तक लाइए। श्वसन चेतना को कुछ देर के लिए यहाँ केन्द्रित कीजिए।
भ्रूमध्य पर ध्यान कीजिए।
तत्पश्चात् 'हं' की मानस तरंग के साथ रेचक करते हुए मेरुदण्ड से होकर नीचे मूलाधार में अपनी चेतना को ले जाइए।
मेरुदण्ड में 'सो' की तरंग के साथ आप आरोहण करते हैं, अर्थात् ऊपर चढ़ते हैं और इसके विपरीत 'हं' की तरंग के साथ मेरुदण्ड में नीचे उतरते हैं, जिसे अवरोहण कहेंगे।
आरोहण का मार्ग मूलाधार चक्र से आज्ञा चक्र तक है तथा अवरोहण का मार्ग आज्ञा चक्र से मूलाधार चक्र तक है।
'हं' के साथ रेचक करने के उपरांत कुछ विश्राम कीजिए।
स्वयं के प्रति सचेत रहिए। शून्य का निर्माण नहीं करना है।
सारांश में यह प्रक्रिया इस प्रकार है।
आप 'सो' की तरंग के साथ मेरुदण्ड में से ऊपर आरोहण करते हैं।
कुछ क्षण के लिए श्वास रोककर भ्रूमध्य पर ध्यान करते हैं।
तत्पश्चात् 'हं' एवं रेचक के साथ मेरुदण्ड में से नीचे अवरोहण करते हैं।
चेतना मूलाधार चक्र की कुण्डलिनी पर स्थिर रहती है।
इस प्रकार पंचम अभ्यास के अन्तर्गत 'सो' एवं 'हं' के साथ युक्त श्वसन के साथ चेतना को मेरुदण्ड में ऊपर एवं नीचे ले जाते हैं।
सम्पूर्ण प्रक्रिया निम्नानुसार होगी – प्रथम अभ्यास शिथिलीकरण का है।
द्वितीय अभ्यास में मेरुदण्ड के अन्दर लययुक्त श्वसन निहित है।
तृतीय अभ्यास में मेरुदण्ड में 'सो-हं' की तरंगों की आवृत्ति-पुनरावृत्ति है।
चतुर्थ सोपान में मूलाधार में रुककर उल्टे त्रिभुज एवं उसके भीतर की सर्पशक्ति पर ध्यान करते हैं।
चेतना के आरोहण एवं अवरोहण पर निरन्तर अपनी सजगता बनाये रखते हैं और अन्त में चेतना को स्थान विशेष पर केन्द्रित करते हैं।
रेचक को चेतना का अवरोहण कहेंगे।
तत्पश्चात् मूलाधार पर ध्यान ही चेतना को वहाँ स्थिर या केन्द्रित करना कहलाएगा। पूरक के समय चेतना का आरोहण होगा।
अजपा के अभ्यास में प्रमुख बातें हैं – लययुक्त श्वसन, ऊँची कल्पना, पूर्ण अविरल सजगता, पूर्ण शिथिलीकरण तथा समस्त कार्यों के प्रति

चैतन्यता। मानसिक विश्रांति के लिए सर्वोत्तम साधन आत्म-चेतना एवं स्वनिर्देश या स्वप्रस्ताव है।

प्रारम्भ में चेतना की परिक्रमा कठिन क्रिया मालूम होती है, परन्तु बाद में अभ्यास से वह सरल एवं स्वाभाविक बन जाती है।

यह अभ्यास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

इसकी सफलता पर व्यक्ति को सुख-शांति की प्राप्ति होती है, अच्छे स्वप्न आते हैं और दृष्टिकोण बदल जाता है।

कुण्डलिनी के जागरण पर व्यक्ति को सर्वप्रथम शांति लाभ होता है, तत्पश्चात् ज्ञान की प्राप्ति होती है। यदि अभ्यासी को शांति मिले, ज्ञानार्जन हो, तो ध्यान का अभ्यास समझना चाहिए। इस अभ्यास के उपरान्त हम अभ्यास के अन्तिम सोपान पर कदम रखते हैं।

षष्ठम सोपान

यह अभ्यास अपेक्षाकृत कठिन है। इसके लिए अधिक कल्पनाशक्ति, धैर्य तथा श्वसन प्रक्रिया पर नियन्त्रण की आवश्यकता होती है।

किसी सुखद आसन में बैठिये।

मेरुदण्ड सीधा रहे।

हाथों को घुटने पर रखिए या परस्पर बाँधकर गोद में रखिए।

कपड़ों को ढीला कीजिए। टाई, घड़ी, अंगूठी, मोजे, आदि निकाल दीजिए। मानसिक तनाव एवं चिन्ताओं से अपने को मुक्त कीजिए।

चैतन्यता का अभ्यास कीजिए। स्वत: को प्रस्ताव दीजिए।

शांति एवं आनन्द का अनुभव कीजिए।

इस प्रकार अपने को पूरी तरह शिथिल कीजिए।

अब अँगूठे से कानों को बन्द कर लीजिए।

नेत्रों एवं होठों को अँगुलियों से बन्द कीजिए। गहरी श्वास लीजिए।

पूरक के पश्चात् नासिका छिद्रों को भी बन्द कीजिए।

चेतना को मेरुदण्ड में घुमाइए।

'हं' की तरंग के साथ आज्ञाचक्र से मूलाधार पर अवरोहण कीजिए और 'सो' की तरंग के साथ आज्ञा चक्र तक आरोहण कीजिए।

श्वास को शिथिल कीजिए। कुछ विश्राम कीजिए।

इस विश्रांति काल में आत्म-सजगता तथा चेतनता का अभ्यास कीजिए।

अजपा के षष्ठ सोपान के द्वितीय अभ्यास में नेत्र, कान, मुँह और नासिका को बन्द कीजिए।
स्वाभाविक रूप से पूरक कीजिए। कुम्भक लगाइए।
इस काल में अपनी चेतना को मूलाधार से आज्ञा तक मेरुदण्ड में घुमाइए।
कुछ देर तक आज्ञा चक्र पर स्थिर रखिए।
अब रेचक के समय अवरोहण कीजिए।
विश्राम कीजिए। आत्म-जागरूकता का अभ्यास कीजिए।

निष्कर्ष

अजपा ध्यान के छ: सोपानों का हमने विस्तारपूर्वक वर्णन किया। इनके द्वारा यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि किस प्रकार सजगतापूर्वक चेतना को श्वास के साथ भ्रमण कराते हैं। अभ्यासी को प्राथमिक अभ्यास से साधना आरम्भ कर क्रमश: बढ़ते हुए अन्तिम अभ्यास पर पहुँचना चाहिए। इन छ: अभ्यासों में से प्रथम चार का अभ्यास सरलतापूर्वक प्रतिदिन घर पर किया जा सकता है। पंचम अभ्यास कुछ कठिन है, जिसके लिए पर्याप्त मात्रा में कल्पना शक्ति या धारणा शक्ति की आवश्यकता होती है। अत: इस अभ्यास की सफलता में कुछ समय लगेगा, परन्तु इसमें सफलता प्राप्त होने पर षष्ठ अभ्यास सरल हो जाएगा।

अजपा जप की क्रिया व्यावहारिक है। उसके मनोवैज्ञानिक महत्त्व पर प्रकाश नहीं डाला गया है, परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि यह मानसिक विकारों का स्थायी इलाज करता है। अनेक बीमारियों के निवारण की इसमें जो क्षमता है, उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

अजपा जप क्रिया के अनेक गुप्त लाभ हैं, जिनकी ओर प्राचीन शास्त्रों में अप्रकट तथा रहस्यात्मक ढंग से संकेत किया गया है।

दीर्घ अवधि के अभ्यासोपरांत अनुभव प्राप्त करने पर ही अजपा जप के विभिन्न क्षेत्रों पर चर्चा की जा सकती है।

चिदाकाश धारणा

अनन्त एवं शुद्ध चेतना के साथ योग की उच्चतम स्थिति की प्राप्ति के उद्देश्य से योग की पूर्णावस्था पर पहुँचने के लिए जो विभिन्न साधनाएँ हैं, उनमें से चिदाकाश धारणा की साधना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं लाभदायक है। इस साधना में योग की विभिन्न प्रक्रियाओं का समावेश है। यदि पूर्ण समर्पण एवं श्रद्धा-विश्वास के साथ साधक निरंतर इसका अभ्यास करे तो उसे सूक्ष्म तथा रहस्यपूर्ण अनुभूतियाँ प्राप्त होंगी, जिससे ध्यान की उच्च अवस्था की ओर प्रस्थान करने के लिए उसका उत्साहवर्द्धन होगा। उचित विधि से यह साधना करने से एवं उसमें सिद्धि प्राप्त करने से साधक आध्यात्मिक प्रकाश की ओर उड़ान भरता है।

अनिवार्यत: योग व्यावहारिक अनुभव की तथा अभ्यास की क्रिया है। इसका मात्र बौद्धिक या सैद्धांतिक ज्ञान रहने से कोई लाभ नहीं। तथापि साधना की विभिन्न प्रक्रियाओं का अर्थ, विधि, लाभ आदि ज्ञात होने से साधक को सहायता मिलती है। इसी दृष्टिकोण से चिदाकाश धारणा की पृष्ठभूमि, क्रिया तथा उसके लाभ का संक्षिप्त विवरण इस लेख में दिया जा रहा है।

योग क्या है ?

इस साधना के अंतर्गत सम्मिलित तत्त्वों का एवं उससे प्राप्त होने वाले लाभ का विस्तृत वर्णन करने के पूर्व 'योग' शब्द का वास्तविक अर्थ समझना अनिवार्य है। प्राय: 'योग' शब्द का गलत अर्थ लगाया जाता है। कुछ अज्ञानी बुद्धिजीवी लोगों के लिए योग का तात्पर्य केवल हठयोग की कठिन शारीरिक क्रिया या व्यायाम है। 'हठयोग' का अर्थ समझने में असमर्थ होने के कारण ही यह भ्रम उत्पन्न होता है। योग का अर्थ गलत

ढंग से शरीर को इधर-उधर मोड़ने की कठिन प्रक्रिया नहीं है। जमीन के अन्दर कुछ दिन तक दबे रहना या शूली पर सोना योग नहीं है। इन क्रियाओं का सम्बन्ध योग की क्रियाओं से नहीं है।

'हठ' शब्द 'ह' और 'ठ' वर्ण से बना है, जिसका अर्थ चन्द्र तथा सूर्य है। ये शरीर में प्रवाहित होने वाले चन्द्र एवं सूर्य प्रवाह का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन ऋणात्मक तथा धनात्मक धाराओं का योग तथा मध्यवर्ती सुषुम्ना नाड़ी से उन्हें प्रवाहित कर सुषुप्त चेतना शक्ति या कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर उसे शुद्ध चेतना के क्षेत्र तक पहुँचाना ही योग की इस शाखा विशेष का उद्देश्य है। इसके लिए शरीर को कष्ट पहुँचाया जाएगा; यह विचार ही गलत है।

कुछ अन्य वर्ग के लोगों का मत है कि सांसारिक जीवन का त्याग तथा कठिन जीवन यापन ही योग है। योग के प्रति यह दृष्टिकोण भी गलत है। वस्तुतः योग जीवन की कला एवं विज्ञान है। आधुनिक मनोविज्ञान में यह बहुत उच्च स्तर पर पहुँचा हुआ है, जिसमें व्यक्तित्व के हर क्षेत्र का ज्ञान निहित है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार योग व्यक्तित्व के दोषों का निराकरण ही नहीं करता, वरन् इसका मनोकायिक वैज्ञानिक महत्त्व भी है।

उच्चतम आध्यात्मिक महत्त्व के अतिरिक्त इसका व्यावहारिक मनो-वैज्ञानिक क्षेत्र भी है। यह विक्षिप्त व्यक्तित्व वाले मनुष्य के शरीर, मन एवं बुद्धि की शक्ति को एकत्र कर, उसका अपनी आत्मा से या असीम सत्ता से योग कराता है।

योग के प्रारंभिक नैतिक अभ्यास– यम, नियम; शारीरिक अभ्यास– आसन; मानसिक एवं भावनात्मक अभ्यास– प्राणायाम, प्रत्याहार मनुष्य के व्यक्तित्व को पुनर्व्यवस्थित करते हैं तथा उसे संसार में प्रगति की दौड़ के अनुकूल बनाते हैं। यदि व्यक्ति इच्छुक हो तो योग की उच्च साधनाएँ– धारणा, ध्यान, समाधि, उसे दिव्य ज्योति की ओर ले जाती हैं। इस प्रकार योग की अन्तरंग तथा बहिरंग साधनाएँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जो मनुष्य को जीवन के उद्देश्य की पूर्ति करने के योग्य बनाती हैं।

चिदाकाश धारणा के अन्तर्गत इन दोनों प्रकार की साधनाओं का समावेश है, इसलिए यह एक अपूर्व साधना है। यदि कुछ समय के लिए ही साधक इसका अभ्यास करे तो भी उसका व्यक्तित्व बदल जायेगा, सुगठित और व्यवस्थित हो जाएगा, उसकी कमियाँ दूर हो जायेंगी।

चिदाकाश क्या है ?

साधक को वास्तविक अभ्यास के पूर्व विभिन्न शब्दों के अर्थ एवं उनके महत्त्व को समझ लेना चाहिए। अत: हम सर्वप्रथम 'चिदाकाश' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य स्पष्ट करेंगे।

'चिदाकाश' शब्द की संरचना चित् और आकाश शब्द से हुई है। चित् का अर्थ है चेतना। इस प्रकार चिदाकाश का मतलब चित् का आकाश है। आकाश शब्द के प्रयोग से एक अनन्त क्षेत्र का बोध होता है। जब हम चिदाकाश शब्द का उपयोग करते हैं, तब चित् का क्षेत्र सीमित न रहकर असीम हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि चिदाकाश के अर्थानुसार चेतना का विस्तार वस्तुनिष्ठ संसार से बाहर अनन्त ब्रह्माण्ड तक हो जाता है। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने की है कि 'चित्' को 'चित्त' न समझा जाये। 'चित्त' का सम्बन्ध अंत:करण से है, जिसके अन्तर्गत मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार आते हैं। परन्तु चित् चेतना का पर्यायवाची है। चिदाकाश धारणा वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से स्थूल शरीर से जुड़ी हुई अंदर क्रियाशील रहने वाली चेतना का विस्तार किया जाता है, सूक्ष्म बनाया जाता है तथा उसे अनन्तता की ओर या शुद्ध चेतना की ओर ले जाते हैं।

चिदाकाश शब्द से सीमारहित क्षेत्र का बोध होता है। स्मृतियों में तीन प्रकार के आकाशों का वर्णन मिलता है। प्रथम है – आकाश, अर्थात् सामान्य या प्राकृतिक आकाश। द्वितीय है– चित्ताकाश, अर्थात् मन का आकाश। तृतीय है– चिदाकाश, अर्थात् बुद्धि का आकाश। चिदाकाश प्रथम दो की अपेक्षा सूक्ष्म माना गया है। कारण यह है कि इसका सम्बन्ध पूर्णत: शुद्ध चेतना से है। योग उपनिषद् में पाँच प्रकार के आकाशों का उल्लेख मिलता है– आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश एवं सूर्याकाश। प्राकृतिक आकाश अन्तहीन है तथा भौतिक नेत्रों से दिखाई देता है। पराकाश अन्दर एवं बाहर के अंधकार का संकेत करता है। महाकाश, अन्दर एवं बाहर अनुभवगम्य अग्नि की सी चमक का प्रतिनिधित्व करता है। तत्त्वाकाश अन्दर की आत्मा की अनुभूति का दिग्दर्शन कराता है। सूर्याकाश शुद्ध चेतना को प्रदर्शित करता है, जो सौ हजार सूर्यों की भाँति तेजोमय है। ये सभी धारणा के वे स्तर हैं, जिनसे होकर साधक को क्रमश: जाना पड़ता है। यह विषय अनुभूति का है, परन्तु उन साधकों के ज्ञान के लिए इनका वर्णन किया है, जो आध्यात्मिकता के उच्च स्तर पर पहुँचने के लिए अखण्ड

साधना करते हैं। ऊपर वर्णित 'व्योमपञ्चक' चिदाकाश धारणा के अन्तर्गत आता है। इसलिए यह विशेष महत्त्व का विषय है।

'धारणा' शब्द का स्पष्टीकरण भी अनिवार्य है। पातंजल योग सूत्र के अनुसार मानसिक शक्तियों को किसी विशेष क्षेत्र या वस्तु विशेष पर केन्द्रित करना ही 'धारणा' है। दूसरे शब्दों में धारणा के अभ्यास में मन एक वस्तु पर एकाग्रता की अवस्था में रहना चाहिए। मन की यह अवस्था उसकी अन्य तीन अवस्थाओं के विपरीत है। ये तीन अवस्थाएँ हैं–

1. क्षिप्त
2. मूढ़
3. विक्षिप्त

किसी एक वस्तु पर मन को स्थिर करना ही धारणा कहलाती है। योग साधना के अन्तर्गत अनेक प्रकार की धारणाओं का समावेश होता है। योग चूड़ामणि उपनिषद् में सोलह आधारों, तीन लक्ष्यों एवं पाँच आकाशों का वर्णन है। हमने पाँच आकाशों का वर्णन किया है, जो ध्यान के विषयाश्रित हैं। इसके अतिरिक्त तीन लक्ष्य हैं– आन्तरिक, बाह्य एवं मध्यमा। चेतना के सोलह आत्मिक केन्द्रों से सोलह आधारों का सम्बन्ध है। आगे वर्णित प्रमुख केन्द्रों की गिनती की जाती है। परन्तु धारणा की विधि से मन को ध्यान तथा समाधि के लिए तैयार करने के उद्देश्य से इनका बहुत महत्त्व तथा उपयोगिता है। पूर्णता प्राप्ति के लिए योग में धैर्य तथा निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है। 'योग' का अन्तिम उद्देश्य शुद्ध चेतना से योग करना है।

चिदाकाश धारणा से प्रारम्भ कर अन्त में तेरह बार 'ॐ' का उच्चारण किया जाता है। अत: इसका महत्त्व समझना रुचिपूर्ण एवं उपयोगी होगा।

'ॐ' शब्द का अर्थ एवं महत्त्व

मन्त्र सूत्रों में ॐ को सेतु या पुल माना गया है। किसी भी मन्त्र के शब्दोच्चारण में प्रारम्भ एवं अन्त में ॐ शब्द का योग किया जाता है। इसके बिना मन्त्र पूर्ण नहीं माना जाता। अत: ॐ वह बांध है, जिसमें मन्त्र की शक्ति होती है। यह दावे के साथ कहा जाता है– कोई भी मन्त्र तभी चैतन्य एवं सजीव बनेगा तथा उसमें से शक्ति तभी प्रकट होगी, जब उसके साथ ॐ शब्द को युक्त किया जाएगा। चिदाकाश धारणा की साधना में भी ॐ का यही अर्थ एवं महत्त्व है।

इसके अतिरिक्त ॐ का विस्तृत एवं गहन अर्थ है। पातंजल योग सूत्र के अनुसार यह शब्द ईश्वर का सांकेतिक चिह्न है। यह असीम सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है। ईश्वर प्रणिधान क्रियायोग का एक अंग है। अत: जागरूकतापूर्वक अर्थ को समझते हुए इस शब्द का उच्चारण करना अनिवार्य है। प्राचीन काल से यह शब्द परमात्मा या सर्वोच्च आत्मा का प्रतीकात्मक स्वरूप माना जाता है। यदि इस शब्द का विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि इसकी रचना चार मात्राओं से हुई है। ये चार मात्रायें हैं– अ, उ, म् तथा अर्द्धचन्द्र, जिसके ऊपर बिंदु लगा होता है। कुछ योग उपनिषदों में तथा माण्डूक्योपनिषद् में इस सांकेतिक चिह्न का अर्थ विस्तारपूर्वक वर्णित है। यह सम्पूर्ण शब्द शुद्ध चेतना का प्रतीक है तथा इसकी मात्राएँ ब्रह्माण्ड में व्याप्त महान् शक्ति, अर्थात् 'पुरुष' का सूक्ष्म या स्थूल प्रकाशन है।

उपनिषदों के अनुसार तीन मात्राएँ, तीन लोकों– भू: भुव: स्व:, तीन वेदों– ऋक्, यजु: और सामवेद एवं तीन स्थितियों– जाग्रत, स्वप्न और निद्रा को प्रदर्शित करती हैं। चतुर्थ मात्रा उच्च अवस्था या अविनाशी ब्रह्म का प्रतीक है। कहा जाता है कि 'अ' जागृतावस्था का तथा 'म्' सुषुप्तावस्था का प्रतीकात्मक चिह्न है। हम नेत्रों से स्थूल संसार का या भौतिक जगत् का दिग्दर्शन करते हैं, इसलिए प्रथम मात्रा का स्थान नेत्रों में है। द्वितीय मात्रा या स्वप्नावस्था का स्थान कण्ठ में है। अंतिम अवस्था या मात्रा का वास हृदय में है।

'अ' स्थूल, अर्थात् विश्व या विराट् को प्रदर्शित करता है। 'उ' सूक्ष्म, अर्थात् हिरण्यगर्भ या तेजस् का प्रदर्शन करता है। 'म्' दैवायत्त अवस्था, अर्थात् प्रज्ञा का निर्देशन करता है, जिसे प्रकाशित नहीं किया जा सकता। निर्माण कार्य के कारण 'अ' ब्रह्म और रजोगुण का प्रतीक है। 'उ' सत्त्व और विष्णु का प्रतीक है, जो सृष्टि को बनाए रखते हैं। 'म्' संहारकर्त्ता या तमोगुण का प्रदर्शन करता है। उच्चतम अवस्था के कारण प्रणव ही सार तत्त्व है। 'अ' के साथ ब्रह्मा युक्त है, 'उ' मात्रा में विष्णु युक्त हैं तथा 'म्' मात्रा में रुद्र का योग है। स्थूल, सूक्ष्म तथा दैविक; ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र; या इच्छा, ज्ञान और क्रिया– ये तीन अवस्थाएँ पुरुष या शुद्ध चैतन्य या चेतना की ही स्थूल या सूक्ष्म स्थितियाँ हैं। अत: इनके बारे में जानना आवश्यक है।

शरीर में मूलाधार से आज्ञा तक छ: चक्र हैं। ये चक्र भी पाँच महाभूतों तथा पाँच सूक्ष्म तत्त्वों का प्रदर्शन करते हैं। मूलाधार का तत्त्व पृथ्वी है। ॐ का उच्चारण मूलाधार से प्रारम्भ कर आत्मिक मार्ग सुषुम्ना से होते हुए सहस्रार

तक करते हैं। इसका तात्पर्य है कि चेतना को स्थूल भौतिक धरातल से सूक्ष्म एवं उच्च धरातल की ओर ले जाते हैं।

साधना के प्रारम्भ में 'ॐ' का उच्चारण करने से साधक का आलस्य एवं सुस्ती दूर हो जाती है। साधना के अन्त में 'ॐ' का उच्चारण इस उद्देश्य से किया जाता कि बहिर्मुखी होने पर साधक में आनन्द की अनुभूति एवं अन्तर्मुखता बनी रहे। साधना से मन की एक विशेष स्थिति निर्मित हो जाती है, एक अदृश्य वातावरण का निर्माण हो जाता है। एकदम से साधना भंग कर बहिर्मुखी बन जाने से उसका शीघ्र ही नाश हो जाता है। उस परिस्थिति को स्थिर रखने के लिए ही 'ॐ' का उच्चारण करने के पश्चात् साधक को बाह्य जगत् से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

चक्रानुसंधान

चक्र चेतना के केन्द्र हैं। इन केन्द्रों के साथ योग करना ही अनुसंधान कहलाता है। चेतना के इन सूक्ष्म केन्द्रों में, सुषुप्तावस्था में दिव्य शक्ति का वास है। अन्तर्मुखता एवं विभिन्न केन्द्रों से सम्बन्ध स्थापित करते हुए व्यक्तिगत चेतना का योग उच्च चेतना से किया जाता है।

चिदाकाश धारणा के अन्तर्गत ग्यारह चक्रों का उल्लेख मिलता है। इन चक्रों से चेतना को सम्बन्धित करते हैं और इनके मध्य घुमाते हैं। चक्रभेदन की द्वितीय अवस्था को प्राप्त कर यह क्रिया की जाती है। इन ग्यारह केन्द्रों का नामकरण इस प्रकार किया गया है –

1. मूलाधार — सबसे नीचे गुदाद्वार और जननेन्द्रिय के मध्य शुक्र स्थान में होता है।
2. स्वाधिष्ठान — जननेन्द्रिय के समानान्तर, जहाँ मेरुदण्ड समाप्त होता है, उससे दो अंगुल नीचे।
3. मणिपुर — नाभि के पीछे मेरुदण्ड में।
4. अनाहत — हृदय के पीछे मेरुदण्ड में।
5. विशुद्धि — गले का पिछला हिस्सा, जहाँ मेरुदण्ड गले की हड्डी से जुड़ता है।
6. आज्ञा — भ्रूमध्य के ठीक पीछे, जहाँ मेरुदण्ड का अन्त होता है।
7. बिन्दु — सिर का सबसे ऊपरी भाग, जहाँ पण्डित लोग चुटिया रखते हैं।

8. सहस्रार — सिर का मध्य भाग, जहाँ छोटे बच्चों का सिर बहुत कोमल होता है।

9. चिदाकाश — मस्तक के पीछे का स्थान—आँख बन्द करने पर जहाँ अन्धकार दिखाई देता है।

10. भ्रूमध्य — दोनों भौहों के बीच का स्थान, जहाँ स्त्रियाँ टीका लगाती हैं।

11. नासिकाग्र — नाक का अगला हिस्सा।

यह बात स्मरण रखिए कि ये चक्र स्थूल या भौतिक अंग नहीं हैं, वरन् ये आध्यात्मिक सूक्ष्म रचनाएँ हैं, जिनका अनुभव साधना के द्वारा किया जा सकता है। इनका अच्छी तरह ज्ञान प्रदान करने के ध्येय से प्रत्येक केन्द्र का विवरण दिया जा रहा है।

मूलाधार चक्र

यह निम्नतम चक्र है। प्रजनन प्रदेश के नीचे इसकी स्थिति है। इसे चार दलों वाला कमल माना गया है। दलों पर वं, शं, षं तथा सं वर्ण अंकित हैं। इसका बीज मन्त्र 'लं' है। भू से इसका सम्बन्ध है। इसका रंग पीला होता है। इसके अधिपति देवता ब्रह्मा हैं, कुछ गणेश को मानते हैं। देव अपनी शक्ति डाकिनी के साथ स्थित हैं। नीचे की ओर मुख किए हुए स्वयम्भू शिवलिंग इस प्रदेश में हैं। वायु अपान है तथा इसका लोक 'भूलोक' है।

स्वाधिष्ठान चक्र

योनि प्रदेश के समीप, प्रजनन प्रदेश के मूल में यह केन्द्र स्थित है। यह छः दलों वाला पद्म है। इसका रंग सिन्दूरी होता है। दलों पर छः वर्ण बं, भं, मं, यं, रं, लं होते हैं। इसका तत्त्व जल है, जिसका सांकेतिक चिह्न श्वेत द्वितीया का चन्द्र है। इसका गुण रस है। वायु व्यान है। शक्ति शाकिनी के साथ विष्णु इसके देवता हैं। लोक भूव:लोक है। यह केन्द्र जल, प्राण, स्वाद तथा करों से सम्बन्धित है।

मणिपुर चक्र

इसका स्थान नाभि के समानान्तर कटि प्रदेश में है। इसे दस दलों वाला नीलकमल माना जाता है। दलों पर डं से लेकर फं वर्ण तक अंकित है। इसका तत्त्व अग्नि है। अत: इसका मध्यवर्ती रंग लाल होता है। वायु समान है। लाकिनी देवी

के साथ 'रुद्र' इसके देवता हैं। स्वर लोक है। इसका सम्बन्ध अग्नि, सूर्य, राजस तथा दृष्टि से है।

अनाहत चक्र

हृदय प्रदेश में इसकी स्थिति है। रचना 12 दलों वाले रक्तवर्णिम पद्म की भाँति है। दलों पर कं से लेकर ठं आदि वर्ण हैं। इसके देवता शक्ति काकिनी के साथ 'ईशान' हैं। इसमें स्वर्णिम त्रिभुज में लिंग है, जिसे बान कहते हैं। इसका सम्बन्ध वायु तत्त्व, स्पर्शेन्द्रिय से है। लोक महर्लोक है।

विशुद्धि चक्र

इसकी स्थिति कण्ठ में मेरुदण्ड के संधि स्थल पर है। यह 16 दलों वाला पद्म है। दलों पर अं से अः आदि वर्ण अंकित हैं। पूर्ण चन्द्र की भाँति इसका तत्त्व आकाश है। ध्वनि इसकी विशेषता है तथा वायु उदान हैं। शक्ति शाकिनी के साथ सदाशिव इसके इष्ट देवता है। लोक जनलोक है।

आज्ञा चक्र

दोनों भ्रूवों के मध्य में खोपड़ी के पीछे इसकी स्थिति है। यह दो दलों वाला पद्म है, जिसमें 'हं' एवं 'क्षं' वर्ण अंकित हैं। ये वर्ण शिव एवं शक्ति के प्रतीक हैं। इसका तत्त्व ॐ है। यह ज्ञान का क्षेत्र है। इसके इष्ट परम शिव हैं, जो शक्ति हाकिनी के साथ हैं। इसका रंग श्वेत धूम्र है। इसका लोक 'तपः लोक' है। यहाँ श्वेत त्रिभुज के मध्य में इतरलिंग है।

बिन्दु

इस शब्द की विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता है। योग साहित्य में इस शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया गया है। सर्वप्रथम इसे पराबिन्दु कहा गया है, जो सदाशिव या शुद्ध चेतना का सांकेतिक चिह्न है। सांख्य दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति प्रकृति से हुई है। सांख्य मूलतः दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। इनमें से एक है 'पुरुष' एवं दूसरी है 'प्रकृति'। पुरुष को पराबिन्दु, उच्च अवस्था कहा गया है। पुरुष स्थायी, अरूप और बुद्धिवादी है। इसके विपरीत 'प्रकृति' परिवर्तनशील तथा बुद्धिरहित है। जब तक प्रकृति शांत रहती है, तब तक निर्माण कार्य नहीं होता। जब प्रकृति में प्राथमिक सूक्ष्म

गति होती है, उसका विस्तार होता है, तब परिणामस्वरूप पुरुष शक्ति का प्रकाशन होता है।

तंत्र शास्त्र के मतानुसार शिव के बिना शक्ति का अस्तित्व नहीं तथा शक्ति के बिना शिव की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रकृति शिव की शक्ति है। प्रथम स्पंदन में पराबिन्दु का विभाजन तीन रूपों में हो जाता है– नाद, बिन्दु एवं बीज। नाद वह सूक्ष्मतम गति है जिसकी उत्पत्ति सर्वप्रथम हुई। बिन्दु उस शक्ति का प्रदर्शन करता है जो निर्माण कार्य हेतु तत्पर है। बीज सृष्टि का स्रोत है। इस प्रकार बिन्दु सृष्टि की निर्माण शक्ति का सूक्ष्मतम प्रतीक है। यह वस्तु जगत् का सांकेतिक प्रतीक है। बिन्दु रूप में यह प्रकृति की मूल अवस्था है।

प्रकृति या शक्ति के विस्तार से निर्मित यह ब्रह्माण्ड विलयन के उपरांत उसी मूल अवस्था को प्राप्त होता है। यह चेतना की एक अवस्था है। प्रतिदिन की चेतना के अन्तर्गत इसका प्रकाशन होता है। कारण यह है कि बिन्दु के अन्तर्गत शून्य या जड़ तथा गुण, दोनों का समावेश है। अर्थात् यह अवस्था पूर्ण शांति एवं सक्रिय चेतना की भी है। बिन्दु की व्याख्या 'चिद्घन' या समष्टिगत चेतना के रूप में भी की जाती है, जिससे व्यक्तिगत चेतना की उत्पत्ति होती है। उच्चतम अवस्था में इसका वास सहस्रार के पास होता है। इस समय यह शिवस्वरूप, पराबिन्दु अविभाज्य या अभिन्न रूप में होता है। उपनिषद् के अनुसार स्थूल धरातल पर बिन्दु, अर्थात् निर्माण एवं पोषण शक्ति का सम्बन्ध शारीरिक संस्थानों से है। योग चूड़ामणि उपनिषद् में इस बात का वर्णन मिलता है।

बिन्दु पर चेतना को घुमाते समय साधक को उसके महत्त्व का ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि वह न तो स्थूल चक्र है न सूक्ष्म, वरन् मूल तत्त्व का सांकेतिक चिह्न है।

जैसा कि बतलाया जा चुका है प्रकृति से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है, जिसके प्रथम स्पंदन से महत् उत्पन्न हुआ। महत् से बुद्धि की उत्पत्ति हुई। बुद्धि से अहंकार उत्पन्न हुआ तथा अहंकार से पंच तन्मात्राओं या तत्त्वों की उत्पत्ति हुई। ये तत्त्व हैं– शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध। इनके पश्चात् कर्ण, चर्म, नेत्र, जिह्वा एवं नासिका की रचना हुई, जिनसे पाँच कर्मेन्द्रिय– हाथ, पैर, वाणी, गुदा प्रदेश एवं जननांगों की उत्पत्ति हुई।

तत्पश्चात् मन एवं पृथ्वी के पाँच तत्त्वों का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार लौकिक नियमों के अनुकूल विकास हुआ। यदि जगत् का ह्रास या विलयन

होगा तो इसके विपरीत क्रमशः नाश की क्रिया होगी और अन्त में पृथ्वी स्थिर-शांत अवस्था में पहुँच जायेगी। यह शिव-शक्ति वियोग की अवस्था का सांकेतिक रूप है। समष्टि में जो प्रक्रिया होती है, वही व्यक्ति के लिये भी चरितार्थ होती है। इस नियम के अनुसार व्यक्ति के छः प्रमुख चक्र सम्पूर्ण प्रक्रिया का दिग्दर्शन कराते हैं, जो चेतना के विभिन्न स्तरों तथा सूक्ष्म का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कुण्डलिनी शक्ति चेतना शक्ति का प्रतीक है। मूलाधार नामक निम्न प्रदेश में यह चेतना शक्ति निष्क्रिय एवं सुषुप्तावस्था में होती है। इसे जागृत कर, ऊपर ले जाकर, शुद्ध चेतना के साथ इसका संयोग करना ही योग का उद्देश्य है। चिदाकाश धारणा भी एक ऐसी साधना है जिसका उद्देश्य कुण्डलिनी को जागृत करना है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इस साधना के माध्यम से चेतना को इन्द्रियों के धरातल से उच्च धरातल पर ले जाते हैं। इस साधना में चेतना को विभिन्न केन्द्रों में घुमाते हैं। इस क्रिया के समय यह आवश्यक है कि साधक को सभी केन्द्रों के महत्त्व का ज्ञान रहे तभी वह उनके प्रति अधिक जागरूक बन सकेगा। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर 'बिन्दु' पर विस्तृत चर्चा की गई है।

सहस्त्रार

यह शीर्ष पद्म है। शिखर पर सहस्त्र दलों वाला यह कमल है। दलों पर 'अं' से 'क्षं' तक समस्त सम्भावित वर्ण अंकित हैं। कुल वर्ण 50 हैं। पद्म के मध्य में पूर्ण चन्द्र है। इस केन्द्र का सम्बन्ध शरीर से नहीं है। इसलिए यह सूक्ष्म है। इसके इष्टदेव परम सदाशिव या महाशक्ति के साथ परमब्रह्म हैं। छः चक्रों को पार कर कुण्डलिनी की यात्रा का अन्त यहाँ होता है। स्थूल से परे सूक्ष्म धरातल पर होने के कारण इस केन्द्र की गणना मूलाधार से आज्ञा तक के केन्द्रों के अन्तर्गत नहीं की जाती। यह श्रेष्ठ केन्द्र है।

चिदाकाश

यह आंतरिक गगन मण्डल है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। चेतना का सम्बन्ध इस प्रदेश से भी स्थापित करना चाहिए। साधक को प्रथम इस प्रदेश पर अपनी चेतना को ले जाना चाहिए, क्योंकि अन्तिम स्थिति में साधक को अपनी चेतना को इसी क्षेत्र में स्थिर करना पड़ता है।

भ्रूमध्य

यह दोनों भौहों का मध्यवर्ती स्थल है। सुषुम्ना सर्वोच्च महत्त्व की नाड़ी मानी गई है। योग शास्त्रों के अनुसार इस नाड़ी का मूल स्थान सहस्रार है तथा इसका मुख मूलाधार में है। आज्ञा चक्र में पहुँचकर यह नाड़ी दो भागों में विभाजित हो जाती है। एक शाखा भ्रूमध्य से होकर जाती है तथा दूसरी शाखा सिर के पृष्ठ प्रदेश से जाती है। दोनों शाखाओं का योग सहस्रार में होता है। अत: योगी को नासिकाग्र के पश्चात् अपनी चेतना भ्रूमध्य में ले जानी चाहिए। इस स्थान पर ध्यान करने से मन पर नियन्त्रण प्राप्त होता है। योगी इस बिन्दु पर एकाग्रता का अभ्यास करते हैं। इस संदर्भ में गीता में भगवान ने कहा है कि योगी अपने प्राण या चेतना को इस केन्द्र विशेष पर ले जाते हैं।

नासिकाग्र

यह नासिका का अग्र प्रदेश है। दोनों नासिका छिद्रों से इड़ा, पिंगला, चन्द्र-सूर्य तथा ऋणात्मक एवं धनात्मक धाराओं का प्रवाह होता है। नासिका से गंध को ग्रहण किया जाता है। पंच महाभूतों या पंच स्थूल तत्त्वों में से एक तत्त्व पृथ्वी है। गंध इस तत्त्व का गुण या विशेषता है। चेतना को सर्वप्रथम इस केन्द्र पर केन्द्रित करते हैं। यदि मात्र इसी केन्द्र पर धारणा का अभ्यास किया जाय तो यह निश्चित है कि योगी विभिन्न गंधों को ग्रहण करने में सक्षम होगा। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि साधक सांसारिक सूक्ष्म तत्त्वों के प्रति जागृत हो जाएगा जिनसे सुगंध का निर्माण होता है।

प्रमुख बातों के ज्ञान हेतु चेतना के विभिन्न केन्द्रों का यह संक्षिप्त वर्णन पर्याप्त है। सृजन शक्ति के विस्तार की प्रक्रिया में मानव चेतना का स्फुरण निम्न इन्द्रिय स्तर पर होता है। यह चेतना आधार पर कुण्डली मारे हुए है। यह क्रियात्मक शक्ति है, पर यह निष्क्रिय नहीं है, वरन् निम्न केन्द्रों में सुषुप्तावस्था में है। यह चेतना का अंग या कुण्डलिनी शक्ति है। इसे जागृत कर इन्द्रियगत चेतना स्तर से उच्च चेतना के स्तर पर पहुँचाना ही योग की विभिन्न साधनाओं का उद्देश्य है। इसे मूलाधार से जागृत कर सहस्रार में पहुँचाया जाता है। छ: चक्रों से होते हुए सुषुम्ना के मार्ग से यह अपनी यात्रा सम्पन्न करती है।

अत: चिदाकाश धारणा की प्राथमिक अवस्था में साधक को विभिन्न चक्रों के प्रति जागरूक किया जाता है। परिणामत: साधना के अभ्यास काल में वह अपनी चेतना को इन केन्द्रों पर स्थिर कर सकता है। बाद में उसे इन

केन्द्रों में चेतना को घुमाते समय संवेदना प्राप्त होती है। इस प्रकार वह चक्रों की खोज या अनुसंधान कार्य में सफल होता है। चक्रानुसंधान इस साधना का प्राथमिक सोपान है।

चक्रभेदन

अंतर्मुखता द्वारा जब साधक अपनी अंतर्मुखी चेतना को इन केन्द्रों में स्थिर करने में समर्थ हो जाता है तब चक्रों के अंतरावलोकन या भेदन का प्रयास किया जाता है। उज्जायी प्राणायाम की क्रिया द्वारा यह अभ्यास किया जाता है।

कुछ प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण प्राणायामों में से उज्जायी प्राणायाम एक है। विभिन्न प्रकार के 21 प्राणायामों में इसका विशेष स्थान है। यहाँ प्राण का तात्पर्य श्वसन द्वारा ली जाने वाली वायु से नहीं, वरन् उस जीवनी-शक्ति से है जो सम्पूर्ण सृष्टि को प्राण-दान देती है। प्राणायाम का अर्थ मात्र श्वसन पर नियत्रंण नहीं, बल्कि प्राण को सुव्यवस्थित, सुस्थिर एवं दीर्घ करना भी है। उज्जायी में कंठ द्वार से श्वास लेते एवं छोड़ते हैं। इससे नाड़ी के शुद्धिकरण पर प्रभाव पड़ता है।

पूरक क्रिया के समय साधक को यह कल्पना करनी चाहिए कि श्वास या चेतना नासिकाग्र से बिन्दु तक प्रथम पाँच चक्रों से होकर जा रही है। रेचक करते समय ऐसी ही कल्पना शेष चक्रों, अर्थात् आज्ञा से मूलाधार तक करनी चाहिए। इस स्थिति में साधक को ऊँची कल्पना करनी होगी तथा चेतना को अपेक्षाकृत शुद्ध एवं सूक्ष्म बनना होगा। वस्तुत: यदि प्रथम अभ्यास में साधक को अंतर्मुखता की प्राप्ति हो गई है तो विभिन्न केन्द्रों में श्वास को घुमाते समय शीघ्र ही उसे इस क्रिया की अनुभूति प्राप्त होगी। साथ ही यदि साधक इस क्रिया के समय लय स्थिति को प्राप्त नहीं होता है तो प्राण शक्ति से विभिन्न केन्द्रों पर आघात करते हुए वह उन्हें एक सीमा विशेष तक जागृत करने में सक्षम होगा। लय की स्थिति आ जाने पर अनुभव प्राप्त नहीं होते।

योग उपनिषद् में लिखा है कि प्राण एवं अपान के द्वारा व्यक्तिगत जीव ऊपर-नीचे होता है, आगे-पीछे होता है, जिसके परिणामस्वरूप अस्थिरता रहती है। यहाँ जीव का तात्पर्य व्यक्तिगत चेतना से है। श्वास एवं मन के बीच प्राणिक सम्बन्ध है। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि श्वास को सुनियंत्रित किया जाय। अत: साधना के मार्ग पर आगे बढ़ने के पूर्व आवश्यक है कि साधक प्रारंभिक अवस्था में प्राणायाम का अभ्यास करे। प्राण साधना के पश्चात् चक्र

के प्रति जागरूक रहकर वहाँ चेतना को स्थिर नहीं करना पड़ता, वरन् उसे विभिन्न चक्रों से होते हुए ले जाते हैं। निरन्तर चैतन्यतापूर्वक इसका अभ्यास किया जाता है। प्रक्रिया के प्रति साधक को अखण्ड जागरूकता बनाए रखने की आवश्यकता है। क्रिया यंत्रवत् नहीं होनी चाहिए।

चिदाकाश धारणा के अंतर्गत आने वाली समस्त बातों का अर्थ एवं महत्त्व स्पष्ट करने के पश्चात् अब हम उसकी विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे। इस साधना के अंतर्गत निम्नलिखित अभ्यास सम्मिलित हैं–

1. आसन–शरीर की ठीक स्थिति
2. 'ॐ' का उच्चारण
3. चक्रानुसंधान
4. चक्रभेदन
5. धारणा–चिदाकाश पर एकाग्रता की क्रिया, जिसके पाँच भिन्न स्तर हैं।
6. चिदाकाश में इष्ट का दर्शन
7. 'ॐ' का उच्चारण
8. प्रार्थना
9. निर्विचार अवस्था का अभ्यास–विचारों को रोकना ताकि मन विचार रहित हो जाए।
10. शुभ संकल्प-बुद्धि की सहायता से किसी सात्त्विक विचार पर मन को स्थिर करना, जिसका पालन दैनिक जीवन में किया जाए।
11. साधना के महत्त्व पर चिन्तन।

किसी भी साधना की यह प्रथम आवश्यकता है कि साधक किसी शान्त स्थान में उपयुक्त सुखद आसन में बैठे। यदि आसन साधक के उपयुक्त नहीं है या साधक उसका अभ्यस्त नहीं है तो स्वभावत: उसके पैर आदि में दर्द होगा। अनिवार्य साधना में कुछ समय लगता है। उतनी देर यदि साधक उस आसन में सुखपूर्वक न बैठ सके तो उसकी अंतर्मुखता भंग हो जायेगी, वह बहिर्मुखी बन जायेगा। इसलिए साधक के लिए प्रथम महत्त्वपूर्ण आसन है, पद्मासन या सिद्धासन। योगियों द्वारा ध्यान के लिए ये दोनों आसन सर्वोत्तम माने गए हैं। यदि इन दोनों में से किसी आसन को करना संभव न हो, तो स्वस्तिकासन में बैठा जा सकता है।

आराम से बैठने के उपरान्त शान्तचित्त हो गुरु या इष्ट से प्रार्थना करनी चाहिए। इसके पश्चात् कुछ मिनट के लिए, दाहिने एवं बाँये नासिका छिद्र

से श्वास-प्रश्वास क्रिया करनी चाहिए। यह क्रिया लाभप्रद है, परन्तु साधना की आवश्यक शर्त्त नहीं है। अजपाजप ध्यान की पंचम अवस्था में पहुँचाने के पश्चात् यह आशा की जाती है कि साधक इस क्रिया में निपुण एवं इससे अभिज्ञ हो।

द्वितीय अवस्था 'ॐ' के उच्चारण की है। उच्चारण बहुत तेज या अत्यन्त धीमी आवाज में नहीं करना चाहिए। ध्वनि मध्यम रहे। उसकी गति धीमी तथा लयबद्ध हो। सर्वप्रथम श्वास भीतर खींचिये तथा रेचक करते हुए 'ॐ' का उच्चारण कीजिए। उच्चारण मूलाधार से ऊपर सहस्रार तक कीजिए। उच्चारण की पुनरावृत्ति ग्यारह या तेरह बार कीजिए। साधक उच्चारण काल में चैतन्य रहे। मूलाधार से ऊपर सहस्रार तक ध्वनि को ले जाते समय उसकी तरंगों की आंतरिक अनुभूति कीजिए।

तृतीय अवस्था में साधक चक्रानुसंधान करता है। विभिन्न चक्रों का स्थान एवं महत्त्व स्पष्ट किया जा चुका है। साधक को नासिकाग्र से प्रारम्भ कर मूलाधार तक जाना है। तत्पश्चात् मूलाधार से ऊपर नासिकाग्र तक आना है। चक्र पर स्थिर होने के लिये या व्यक्तिगत बहिर्मुखी चेतना को अंत:स्तर पर लाने के उद्देश्य से यह अभ्यास किया जाता है। ये चक्र सूक्ष्म एवं अगोचर हैं। इसलिए तीव्र कल्पना के साथ अंत:चक्षु से इन्हें आंतरिक रूप से ही देखना चाहिए। आरोहण-अवरोहण की इस क्रिया की तीन आवृत्तियाँ कीजिए।

चक्रों की स्थिति का ज्ञान करने के उपरांत चतुर्थ अवस्था में साधक को उज्जायी के सहारे इस अनुभव का प्रयास करना चाहिए कि उसकी चेतना स्पष्टत: इन्हीं केन्द्र से होकर जा रही है। उज्जायी के साथ उसकी चेतना नासिकाग्र से बिन्दु तक ऊपर की ओर जाती है एवं यहाँ कुछ समय के लिए वह श्वास को रोकता है। तत्पश्चात् रेचक करते हुए वह मेरुदण्ड से होते हुए आज्ञा चक्र से मूलाधार चक्र में अपनी चेतना को उतारता है। इस आधार चक्र पर पुन: कुछ देर रुक कर पूरक करते हुए वह क्रिया की द्वितीय आवृत्ति प्रारंभ करता है। इस क्रिया के समय जो संवेदना उत्पन्न होती है, उसके अनुभव का पूर्ण प्रयास करना चाहिए। सम्भव है कि उसे ताप या ठण्ढक का अनुभव हो, परन्तु इसके प्रति चैतन्य बनकर एकाग्रता में बाधा उपस्थित नहीं करनी चाहिए। अनुभूतियों को ग्रहण करते हुए उसे चेतना एवं संवेदना के प्रति द्रष्टा भाव रखना है। यदि संवेदना की अनुभूति न हो तो निराश होने की कोई बात नहीं। प्रारंभिक स्थिति में कुछ साधक इस अभ्यास में अपने स्नायु संस्थान को

लययुक्त नहीं कर सकते या आवश्यकतानुसार एकाग्रता की प्राप्ति उन्हें नहीं होती। परन्तु दृढ़ता एवं संकल्प के साथ निरन्तर साधना की जाए, तो साधक निश्चित रूप से अनेक संवेदनाओं का अनुभव करेगा। क्रिया की पुनरावृत्ति तीन बार करनी चाहिए। प्रारंभ में संवेदना का अनुभव करते हुए धीरे-धीरे चेतना को घुमाना चाहिए। अभ्यासोपरांत यह गति तीव्र करनी चाहिए। इससे एक अखण्ड, अनन्त वृत्त का निर्माण होगा।

साधना की पंचम क्रिया चिदाकाश धारणा की है, जिसकी पाँच अवस्थाएँ हैं।

प्रथम अवस्था

साधक नेत्रों को बंद रखते हुए नेत्रों के सम्मुख मस्तक में दिखने वाले अन्धकार का अवलोकन करें। वह मात्र द्रष्टा की भाँति उसे देखे, परन्तु उसके विश्लेषण का प्रयास न करें। यह प्रथम अवस्था हुई।

द्वितीय अवस्था

धीरे-धीरे साधक को उपर्युक्त अन्धकार के स्थान पर विभिन्न प्रकार के रंग, तारा, स्वर्णिम प्रकाश, नीली लौ, तेज प्रकाश की किरणें या कई रंगों का मिश्रण दृष्टिगत होगा। इस समय साधक का कार्य मात्र इनका दर्शन करना है। इनके प्रकाशन के कारण, अर्थ तथा किसी विश्लेषण से उसे कोई सरोकार नहीं; चाहे वह उसके भौतिक जीवन से सम्बन्धित विचार हो या आध्यात्मिक अनुभव।

तृतीय अवस्था

इस स्तर पर साधक को ध्यान की अधिक गहराई में पहुँचना पड़ता है तथा कल्पना शक्ति को भी अधिक तीव्र बनाना पड़ता है। उसे यह देखना चाहिए कि उसके चारों ओर अन्धकार में उसकी चेतना गहन से गहनतम होती जा रही है। यह चेतना की उड़ान है, जिसे ईसाई धर्म में 'आत्मा की अंधेरी रात' कहा गया है। इस अवस्था में चेतना को, चारों ओर के इस अन्धकार की खोज एवं उसकी व्याख्या तथा विश्लेषण की अनुमति दी जा सकती है। एकाग्रता का स्तर जितना ऊँचा होगा, चेतना का स्तर उतना ही सूक्ष्म होगा। साथ-ही साधक को यह अनुभव होगा कि चेतना इस अभेद्य तथा अनन्त अन्धकार के उस मार्ग

की गहराई में प्रवेश करती जा रही है जो अन्वेषण से परे है। इस अभ्यास से मानसिक संचरण की आधारशिला तैयार होती है। इस क्रिया की सिद्धि सूक्ष्म आत्मिक शक्ति के आंतरिक प्रवाह का मार्ग प्रशस्त करती है और साधक के विकास का मार्ग खुलता है।

चतुर्थ अवस्था

पूर्व अभ्यास के उपरांत साधक अपने अन्तर में चारों ओर व्याप्त अंधेरे की खोज करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह उस अंधेरे की पूर्णतः छानबीन करने का प्रयत्न करता है जो उसके ऊपर, नीचे एवं चारों ओर व्याप्त है। यह अभ्यास चेतना के विस्तार के लिए है। मरुस्थल में भटका यात्री मार्ग पाने के लिए आकाशवृत्त एवं चारों ओर की बातों का पता लगाने का प्रयत्न करता है; ठीक इसी प्रकार साधक इस अन्धकार में प्रकाश की ओर जाने के लिए मार्ग की खोज करता है।

पंचम अवस्था

यह अन्तिम क्रिया है। इस अवस्था में साधक को स्वयं को ज्ञान के उस विस्तृत क्षेत्र, अर्थात् चिदाकाश में स्थित करना है जिसकी खोज में वह प्रयत्नशील था। साधक को चाहिए कि वह अन्य समस्त प्रयासों का अन्त कर दे, परन्तु उसे इस बात का पूर्ण ज्ञान रहे कि वह आंतरिक व्योम के मध्य में है, जिसका अन्वेषण वह अभी तक कर रहा था। वस्तुतः यह उस ब्रह्माण्डीय चेतना के स्तर पर व्यक्तिगत चेतना का विस्तार है जो स्वयं उसके अन्दर विद्यमान है। अभ्यास की सफलता के लिए वस्तुनिष्ठ स्वरूप का त्याग करना चाहिए। अन्तिम अवस्था में साधक को यह समझना चाहिए कि अन्तिम विश्लेषण में वह समस्त ब्रह्माण्ड के मध्य में है। अनन्त चेतना उसके बाहर-भीतर एवं चारों ओर होती है। अनन्त चेतना एकरूप हो जाती है। दोनों के मध्य किसी प्रकार की भिन्नता नहीं रह जाती।

पंचम अवस्था में कुछ काल तक स्थिर रहने के पश्चात् साधक को अपने अभ्यास का अन्त कर देना चाहिए एवं कुछ अवधि तक इष्टदेव की मूर्ति का चिदाकाश में दर्शन करने का प्रयत्न करना चाहिए।

साधना के अन्त में पूर्व वर्णित विधि से ॐ मंत्र का उच्चारण ग्यारह या तेरह बार करना चाहिए। इसके पश्चात् साधक अपनी मुक्ति तथा मानवीय गुणों के

लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करे। तत्पश्चात् विचार प्रक्रिया को रोककर शून्यता का निर्माण करना चाहिए। सांसारिक चेतना पर आने के पूर्व यह अन्तर्मुखता या अन्तर्मौन की स्थिति है।

सबसे अन्त में साधक को सुनिश्चय करना चाहिए कि उसके साधना-मार्ग की कमजोरियों का अन्त हो जाए।

अजपा जप और चिदाकाश धारणा के अभ्यास में बहुत निकट का सम्बन्ध है। वैसे तो योग की सभी क्रियाओं में चिदाकाश का विशेष महत्त्व है। जप, ध्यान, योगनिद्रा, त्राटक, अन्तर्मौन तो चिदाकाश के ही रूप हैं। अधिकतर लोगों की समस्याएँ चित्त की गहराई में छिपी पड़ी रहती है, जो ध्यान-जप के अभ्यास में निकलने लगती हैं। आपको अपनी साधना में प्राप्त अनुभव के प्रति सतर्क रहना होगा। धीरे-धीरे आपके मानसिक तनावों का अन्त होकर आध्यात्मिक अनुभव होने लगेगा और चिदाकाश में दिखने वाले सभी दृश्य केवल ईश्वरीय माया रूप जान पड़ेंगे। चित्त एकाग्र होता जाएगा और सांसारिक माया जाल से मुक्त होकर केवल उस आत्म-स्वरूप परमब्रह्म की प्राप्ति की दृढ़ इच्छाशक्ति बढ़ती जाएगी।

यह आशा की जाती है कि साधना की समाप्ति के उपरांत साधक कुछ समय के लिए अभ्यास का अर्थ एवं महत्त्व तथा जीवन के अन्तिम उद्देश्य का ध्यान करे, जिसकी प्राप्ति वह योग साधना के माध्यम से कर सकता है। उसे यह समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि व्यक्तिगत चेतना शुद्ध चेतना का ही अंशमात्र है। केवल तमोगुण की प्रधानता के कारण ही हम उन्हें एक-दूसरे से भिन्न समझते हैं। कुण्डलिनी शक्ति, दिव्य शक्ति या परमशिव शक्ति उस दैवी शक्ति को प्रदर्शित करती है, जो अपने क्रियात्मक क्षेत्र में जगत् की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी है एवं स्थिर अवस्था में अनन्त चेतना में तथा सुषुप्तावस्था में विराजमान है।

अजपा जप की कड़ियाँ

अजपा जप तन्त्र योग की एक बहुत ही सरल एवं शक्तिशाली क्रिया है। योग शास्त्र में बहुत प्राचीन समय से ही अजपा की साधना वर्णित की गयी है।

प्राचीन कविताओं में अटपटी भाषा में जो कहा गया है, उसका गहरा अर्थ होता है। जैसे –

'शून्य गगन में सेज पिया की' या
'इँगला पिंगला ताना भरनी' या
'नाभि-कमल से सुरता चाली, सुलटा दम उलटाया' या
'रस गगन गुफा में अजर झरे'

इनका अर्थ गहरा है। यह अजपा से सम्बन्धित है। साधारणत: लोग इनका अर्थ शब्दार्थ के अनुसार लगाते हैं, पर योगी इस उल्टी बानी में छुपे रहस्य को अच्छी तरह जानता है। इसमें आत्म-विज्ञान के प्रयोगात्मक रहस्य छुपे हैं। योग्य गुरु ही इसे समझा सकते हैं।

आज बहुत से सम्प्रदाय हैं जो धर्म के नैतिक नियमों का पालन कराकर कुछ विशिष्ट क्रियाओं का अभ्यास कराते हैं। जिन अभ्यासों को करते-करते साधक की छुपी हुई दिव्य शक्ति का विकास होने लगता है। इसका तात्पर्य यही है कि भले ही आप शास्त्र और पुराणों में दिये गए सभी नियमों का पालन न करें, परन्तु व्यावहारिक विधि को अपनाकर उसका अभ्यास करने से अपनी आन्तरिक शक्ति का अनुभव आपको होने लगता है। यह क्यों होता है? इसका वैज्ञानिक कारण भी समझाया जा सकता है।

चूँकि बाल्यावस्था ग्रहणशील होती है, जो भी संस्कार उस अवस्था में दिए जाएँ, सब ग्रहण कर लिए जाते हैं। इस अवस्था में बच्चों की

स्मरणशक्ति को तीव्र बनाने के लिए उसे गिनती, कविता, श्लोक आदि कण्ठस्थ कराए जाते हैं। इन विषयों में से किसी विशेष विषय में बालक का अधिक ध्यान लाया जाए, तो उस विषय सम्बन्धी उसके ज्ञान-तन्तु विकसित होने लगते हैं। वे ज्ञान-तन्तु सुप्त रहते हैं, उन्हें यौगिक क्रियाओं द्वारा जागृत किया जाता है।

जप या अन्य किसी योगाभ्यास द्वारा जब कोई शारीरिक या मानसिक क्रिया करते हैं तब उसका आपके विशेष केन्द्र बिन्दु से सम्पर्क होता है। उससे उस केन्द्र का विकास होने लगता है। इसी कारण से सोई प्रतिभा जागृत होती है, जिसे हम प्रज्ञा कहते हैं।

अजपा एक सहज साधना है, केवल इसे जगाना है। कबीर जी लिखते हैं–

सहज सहज सबकौ कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजैं विषिया तजी, सहज कहीजै सोइ॥

तंत्र में अजपा जप

अजपा जप तन्त्र शास्त्र का एक अंग है। अजपा जप का अभ्यास छः माह करने पर मनुष्य चित्त को समाहित करने की कला सीख सकता है। अजपा गायत्री अष्ट-सिद्धि और नव-निधि प्राप्त करने की प्रणाली है। योग शास्त्र में अजपा का वर्णन बहुत जगह आया है।

अजपा नाम गायत्री, जीवो जपति सर्वदा

यही क्रियायोग है। प्राचीन काल में क्रियायोग की शिक्षा गुरु अपने शिष्यों को गुप्त रूप से दिया करते थे। यह साधारण जनता में प्रचलित नहीं थी। केवल गुरु-शिष्य परम्परानुसार चली आ रही थी। आज इसकी प्रारम्भिक शिक्षा सभी के लिए लिखित रूप में उपलब्ध है, क्योंकि यह आत्मानुभूति के साथ-साथ मानसिक शान्ति और चेतना के विकास के लिए भी बहुत जरूरी है।

अजपा का अभ्यास करने के लिए आज हिमालय में जाने की जरूरत नहीं। इसकी विधि जानकर आप घर बैठे ही गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने के लिए इसका अभ्यास कर सकते हैं। चेतना के विकास से सुख की प्राप्ति होती है और अजपा से चेतना का विकास होता है।

चेतना क्या है?

चेतना क्या है? यह विषय बहुत वृहत है। परन्तु यहाँ अजपा से सम्बन्धित अर्थ में चेतना हमारे अन्दर की ज्ञानशक्ति है, जिसे स्वयं का और दूसरे का, दोनों का ज्ञान रहता है। बाह्य प्रतिक्रियाएँ चेतना के स्तर पर प्रभाव डालती हैं। सूक्ष्म रूप में चेतना सर्वव्यापक है, इसलिए इसका अलग अस्तित्व नहीं, परन्तु शरीर के साथ इसका सम्बन्ध कई स्तरों पर है, जिसकी गहराई में बाह्य परिस्थितियों का कोई प्रभाव नहीं। परन्तु ऊपरी स्तर पर यह हर प्रभाव से प्रभावित रहती है एवं प्रतिक्रिया करती है। साधारण मानव-मन चेतना की परिधि को समझने में असमर्थ है। जैसे-जैसे उसकी चेतना विकसित होती जाएगी, वह उसके वृहत रूप को समझकर अनुभव कर सकता है।

चेतना की सार्वभौमिक अनुभूति के लिए चेतना का विकास जरूरी है। चेतना के रूप को देखा जा सकता है। वह अपने स्वरूप को विचार और क्रिया-प्रतिक्रिया में अभिव्यक्त करती है। आपने देखा होगा कि कुछ मनुष्य पशुवत् कार्य करते हैं, जिन्हें आप पाशविक कार्य कहते हैं। जैसे – किसी की हत्या कर देना या निर्ममता से किसी को मारना, आदि। यह अविकसित चेतना का स्वरूप है, जिसे आप पशु चेतना भी कह सकते हैं।

चेतना का स्वरूप इन्द्रियों के माध्यम से प्रकट होता है। जब इन्द्रिय अनुभव होते हैं, तब उसे आप बाह्य चेतना कहते हैं; और जब चेतना का विकास होता है और व्यक्ति उसके प्रति जाग्रत होने लगता है, तो उसका बाह्य स्वरूप लुप्त होने लगता है। तब व्यक्ति बाह्य जगत् से अनभिज्ञ-सा हो जाता है। उस अवस्था को समाधि कहते हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति की चेतना गहरी होती है, अर्थात् उसकी चेतना का विकास होने लगता है, वैसे-वैसे बाह्य जगत् से उसका सम्बन्ध कम होने लगता है। शरीर से स्थूल सम्बन्ध टूटकर केवल चैतन्य स्वरूप से जुड़ जाता है, वही शुद्ध स्वरूप है।

चेतना अस्तित्व का एक बुनियादी तत्त्व है। वह अपने स्वरूप को किसी भी माध्यम से किसी भी रूप में प्रकट कर सकती है।

रूप या माध्यम की सीमा, चेतना की सीमा नहीं है, सिर्फ चेतना की अभिव्यक्ति ही सीमा है। सृष्टि के विभिन्न रूप और नाम केवल चेतना की अभिव्यक्तियाँ हैं। जड़ पदार्थों में यह अप्रकट रूप से कार्य करती है। विकास के स्तर में यही शक्ति वनस्पति, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी आदि के स्तरों से गुजरते हुए अन्त में मनुष्य के रूप में अभिव्यक्त होती है। मानव

विकास के भी विभिन्न स्तर इस चेतन शक्ति के अनुसार निम्न, उच्च और उच्चतर स्थिति के रूप में प्रकट होते हैं। चेतना के पूर्ण विकास में यह शक्ति सीमाओं को लांघकर अपने शुद्ध स्वरूप में प्रकट होती है, जिसे आत्म-ज्ञान या आत्म-साक्षात्कार कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति प्रयत्न और अभ्यास द्वारा इस स्थिति को प्राप्त कर सकता है। इसके लिए बहुत से माध्यम हैं, जिनके द्वारा चेतना का क्रमिक विकास होता है। इसी के परिणामस्वरूप अनपढ़ कबीर महाज्ञानी बन गए, रैदास भी गुरु बन गए। डाकू रत्नाकर महर्षि वाल्मीकि बन गए।

अजपा जप में चेतना का स्वरूप

अजपा द्वारा चेतना का शनैः शनैः विकास होता है, इसके लिए कहा गया है–

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोहं सोहं सुरता गाई।
आसन दृढ़ करि करो ध्यान, अहर्निशि सुमिरौ ब्रह्म-गियान॥
नासा अग्र निज ज्यों बाई, इड़ा पिंगला मधिसमाई।
छः सौ सहस्त्र इकीसौ जाप, अनहद उपजै आपहि आप॥
बंक नाल में उगै सूर, रोम रोम धुनि बाजै तूर।
उलटै कमल सहस्त्र दल बास, भ्रमर गुफा में ज्योति प्रकाश॥

मनुष्य के तीन चेतन शरीर हैं– स्थूल, सूक्ष्म और कारण। मनोविज्ञान में इन्हें कहते हैं– चेतन, अवचेतन और अचेतन। इन तीनों के ऊपर एक और है– परा चेतन। कोई भी मनुष्य अपने अचेतन को नहीं जानता। हममें से कोई भी यह नहीं जानता कि हमारे अन्दर क्या है? अचेतन में इतनी चीजें भरी हैं कि उनकी वजह से मनुष्य सोचता कुछ है, चाहता कुछ और है तथा करता कुछ और है। शान्ति पाने, समाधि लगाने और शक्तिवान्, समर्थ एवं सर्वज्ञ बनने के लिए रास्ता है अपने अर्धचेतन को बाहर निकालें और अचेतन को एकदम स्वच्छ रखें।

अचेतन में क्या-क्या है, यह ऊपर से बिल्कुल पता नहीं चलता। जिस तरह सूखी धरती को देखने से केवल मिट्टी ही मिट्टी दिखती है और कुछ नहीं। किन्तु जैसे ही उस पर वर्षा का पानी पड़ता है, उसमें से घास और खरपतवार निकल आती है। जिस मिट्टी में पहले कोई वस्तु दिखायी नहीं देती थी, पानी पड़ते ही उसमें से घास निकल आती है, उसी प्रकार 'अचेतन' में जो मल जमा है, वह कोई आघात पड़ने पर ही उभरता है। जैसे मई महीने में गर्मी

से धरती सूखी हुई रहती है, लेकिन पानी पड़ते ही घास जम जाती है। वर्षा ऋतु में पेड़-पौधे भी उसमें से निकल पड़ते हैं, फिर उसी धरती में धान का बीज उगता है और गेहूँ की बालियाँ भी। इसी प्रकार हमारे अचेतन में अनेक चीजें दबी पड़ी हैं। इन्हें साफ करने के लिए पहले इनमें दबी हुई सभी चीजों को उखाड़ फेंकना होगा। सभी सुप्त बीजों को भी बाहर कर देना होगा।

अचेतन को साफ करने का रास्ता है, योग द्वारा विश्रांति। किसी भी मनुष्य को विश्रांति की स्थिति में ले जाकर उसके अन्दर के संस्कारों को बाहर निकाला जा सकता है। शवासन, ध्यान या त्राटक इत्यादि करने से शिथिलीकरण होता है। तनाव कम होते हैं। इसी स्थिति में यदि मनुष्य को जो मन में आता है उसे बोलता जाए, बोलता जाए, तो उसका चित्त याने अचेतन मन साफ होता है। पूर्ण शान्ति की अवस्था आ जाती है। जब मन पूरी तरह से तनावरहित रहता है, उसी समय मनुष्य अपने अवचेतन मन को पूरी तरह जान सकता है।

विश्रांति प्राप्त करने का उपाय है, 'अजपा जप'। अजपा जप करते-करते कुछ देर में चेतना मस्तिष्क रहित, अर्थात् शान्तिमय हो जाती है। शारीरिक चेतना के लुप्त होते ही मनुष्य अचेतन में चला जाता है। अचेतन के पूर्व ही अवचेतन की देहरी पार करनी पड़ती है। अवचेतन है सूक्ष्म शरीर और अचेतन है कारण शरीर। चेतन के कई स्तर एक के बाद एक हैं। अजपा के द्वारा मनुष्य पहले स्थूल में रहता है, फिर अवचेतन में जाता है और अवचेतन को पार करने के बाद अचेतन में चला जाता है। हर अवस्था के लक्षण अलग-अलग हैं।

जब मनुष्य अवचेतन में प्रवेश करता है तब उसे अपने अन्दर की सभी दबी इच्छाएँ, वासनाएँ और संस्कार स्वप्न के रूप में दिखते हैं। शुरू में ये स्वप्न उल्टे-सीधे विकृत रूप में आते हैं। स्वाभाविक-अस्वाभाविक, प्राकृतिक-अप्राकृतिक, उचित-अनुचित, अच्छे-बुरे, सुखदायी और दुःखदायी, सभी प्रकार के स्वप्न मनुष्य देखता है। स्वप्न देखकर मनुष्य अपने ऊपर विश्वास नहीं कर पाता कि स्वप्न में उसने ऐसा क्यों किया। स्वप्नों पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए। उल्टे-सीधे, अस्वाभाविक स्वप्नों का मनुष्य के जीवन में बड़ा महत्त्व है, वे ही तो मनुष्य के अचेतन को प्रकट करते हैं। स्वप्नों का अध्ययन कर मनुष्य के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाता है।

अजपा करते-करते जब योग का अभ्यासी अवचेतन में पहुँचता है तब उसे स्वप्न आने लगते हैं। अजपा के साथ-साथ साधक को इन स्वप्नों को द्रष्टा की तरह देखते जाना चाहिए। जितने संस्कार होंगे, वे सब धीरे-धीरे इसी

प्रकार बाहर निकलेंगे, जैसे धरती में से घास ऊपर निकलती है। जैसे-जैसे अन्त:करण शुद्ध होता जाता है, वैसे-वैसे स्वप्न भी शुद्ध और सतोगुणी होते जाते हैं। स्वप्न ही हमारे अवचेतन व्यक्तित्व का दर्पण है। ध्यान की अवस्था में, अर्थात् ध्यानयोग की क्रिया से यही लाभ होता है। इसीलिए प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह आस्तिक हो या नास्तिक, ध्यान अवश्य करना चाहिए। यहाँ धार्मिकता और अधार्मिकता का कोई प्रश्न नहीं उठता। प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह कामी, क्रोधी या लम्पट हो अथवा सन्त, वैरागी या साधु हो, उसके अन्त:करण की ऐसी बनावट है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, पारसी होने से स्थूल, लिंग और कारण शरीर का अस्तित्व नहीं मिटता। संस्कारों की गठरी सभी के साथ रहती है। इन संस्कारों को खाली करने का अचूक नुस्खा है – 'अजपा-जप'।

पहले मनुष्य को बुरे स्वप्न आते हैं, फिर प्रतीक के रूप में और अन्त में सही और सच्चे स्वप्न। कारण शरीर में पहुँचने पर एक ऐसी भी अवस्था आती है कि सारे स्वप्न समाप्त हो जाते हैं और मनुष्य शून्य में प्रवेश कर जाता है। वहाँ कुछ भी नहीं रहता। न जागरण, न सुषुप्ति, न रूप, न रंग, न गंध, न स्पर्श और न स्वाद। यही समाधि की निर्विकल्प अवस्था है।

अजपा का अभ्यास आपको अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और कारण शरीर को पार कराकर समाधि के परम शिखर पर ले जा सकता है।

चेतना के विभिन्न स्तरों को पार करने की अवस्था में ही एक ऐसी अवस्था आती है, जहाँ सच्चे दृश्य मनुष्य को दिखते हैं। उसे अपने स्थूल लोक की बातें भी मालूम करने की क्षमता प्राप्त होती है। साधक को भूतकाल की बातें भी मालूम पड़ती हैं। गर्भ के संस्कार भी मालूम पड़ते हैं और उससे भी आगे उसे अपने पूर्व जन्म की बातें भी प्रत्यक्ष होती हैं, पर ऐसा तभी होता है जब चित्त संस्कार शून्य हो जाता है। मनुष्य अपना व्यक्तित्व एकदम खाली कर देता है। स्वमानित और स्वकल्पित बन्धनों और बौद्धिक चेतना से ऊपर उठ जाता है। उसके लिए सबसे पहले जरूरी शर्त है विश्रांति। ये मनोविज्ञान की बातें हैं। अजपा के द्वारा इस क्रिया को सिद्ध किया जा सकता है।

मनोविश्लेषण में मनोवैज्ञानिक रोगी को पहले विश्राम या विश्रांति की अवस्था में ले जाते हैं, तब फिर उससे बातें करते-करते उसके अवचेतन को बाहर निकालते हैं। अचेतन को उभारने के लिए कोई आधार चाहिए। यह

आधार बनता है 'सो' और 'हं' की निरन्तर सुरति से। 'सोहं' का जप श्वास के साथ-साथ बराबर कीजिए। साथ-साथ चेतना को भी किसी केन्द्र के माध्यम से पकड़े रहिए। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो आपको निद्रा आएगी। निद्रा में तो मनुष्य अपनी जाग्रत चेतना को खो देता है। तब स्वप्न में उसे अपने विचारों और स्वप्न के कर्मों पर अधिकार नहीं रह जाता।

ध्यान में और अजपा में नींद नहीं आने देनी चाहिए। अजपा में चेतना की एक हल्की किरण से हमेशा साधक को स्वप्न देखते हुए यह भान रहता कि मैं देख रहा हूँ। निद्राकाल के स्वप्न में मनुष्य को यह भान नहीं रहता कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ, यद्यपि जागने पर स्वप्न की घटनाओं की स्मृति वह साथ लेकर लौटता है। इसलिए ध्यान की अवस्था और निद्रा की अवस्था देखने में एक लगने पर भी दोनों में बहुत अन्तर है। ध्यान में मनुष्य स्वप्न देखता है, उसकी स्मृति भी रखता है और हर क्षण अपनी चेतना की डोर भी पकड़े रहता है। चेतना रहने से वह अपने संस्कार को देख सकता है, किन्तु यदि वह अपने को द्रष्टा के रूप में साक्षी भाव से नहीं देखेगा तो संस्कार-दर्शन में खो जायेगा। अपनी चेतना को अजपा के सहारे वह अपनी पकड़ में रख सकता है। अत: अजपा जप चेतना के लिए लगाम का काम करता है।

अपने अचेतन के क्षेत्र में उतरने का अजपा एक वैज्ञानिक तथा पूर्ण तरीका है। अचेतन में नए-नए अनुभवों के कारण कूड़ा जमा होता रहता है, जो रोग, शोक, चिन्ता और व्याधि पैदा करता है। जो लोग नित्य ध्यान की क्रिया से अपने अचेतन के पुराने कूड़े को साफ रखते हैं तथा नित्य नए कूड़े को जमा होने से रोकते हैं, वे ही स्वस्थ और दीर्घायु होने का रास्ता तैयार करते हैं। ध्यान क्या है? ध्यान अपने अवचेतन तथा अचेतन को साफ करने का एक तरीका है।

मानस का स्वरूप

हर व्यक्ति के अन्दर दिव्य शक्ति विद्यमान है, परन्तु व्यक्ति इन्द्रिय सुख में शक्ति का अपव्यय कर देता है और उसकी अधिक से अधिक शक्ति उसकी मानसिक समस्याओं – चिन्ता, क्रोध, विचार और भय में लगी रहती है। अत: जिस तरह अंधेरे कमरे में बैठकर सूर्य के प्रकाश को नहीं देख सकते, पर उसकी गर्मी को अनुभव कर सकते हैं, उसी प्रकार शक्ति के रहते हुए भी

उस शक्ति को आप अनुभव नहीं कर सकते, जब तक कि आप अन्दर नहीं झाँकेंगे। अज्ञानवश व्यक्ति अन्दर नहीं झाँकता और पूरा समय बाह्य जगत् के व्यवहारों में व्यतीत करता है। यही मनुष्य के दु:ख का कारण भी है।

चेतना के ऊपरी स्तर को हम मानस स्वरूप कह सकते हैं। व्यक्ति की हर प्रतिक्रिया उसका स्वरूप है। जैसे कुछ व्यक्ति अत्यधिक क्रोधी होते हैं, वे अपने क्रोध पर नियंत्रण नहीं रख सकते। व्यक्ति क्रोध, लोभ, माया, मोह के कारण ही दु:खी भी रहता है।

मनुष्य की रचना

मनुष्य की रचना ऊपरी तौर पर जैसी आप देखते हैं, इसे यदि वैसी ही समझ लें तो भी आपके अन्दर प्रश्न उठेगा कि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के स्वरूप तथा शरीर और व्यक्तित्व की रचना में उनका स्थान, महत्त्व, कार्य और शक्तियाँ क्या हैं?

'मैं' का ख्याल उठता है। 'मैं' क्या है या 'मैं कौन हूँ?' कुछ लोग मन को ही 'मैं' समझ बैठते हैं, कुछ लोग बुद्धि को 'मैं' समझते हैं, यही सभी दु:खों की जड़ है। यदि मन और बुद्धि को आत्मा के दो आज्ञाकारी सैनिक समझ लिया जाए, तो बहुत-सा अज्ञान और अन्धकार यहीं से दूर भाग जाएगा। परन्तु यह समझ लेना उतना आसान नहीं।

संसार में रहकर बाह्य वातावरण से प्रभावित विचार, सिद्धांत और मान्यताएँ मानस पर प्रभाव डालती हैं और वे ही आगे जाकर आदत, संस्कार एवं व्यक्तित्व बन जाती हैं। ये संस्कार इतने सूक्ष्म और गहरे तल में पड़ जाते हैं कि इन्हें बुद्धि से समझकर अलग नहीं किया जा सकता। बौद्धिक स्तर पर भले ही आप समझ लें कि यह ठीक है या गलत है, परन्तु व्यवहार में पड़े संस्कारों को नहीं बदला जा सकता। इन संस्कारों को मिटाने के लिए चित्त की शुद्धि करनी पड़ेगी और जैसे-जैसे चित्त शुद्ध होता जाएगा, पुराने संस्कार नष्ट होते जायेंगे, वैसे-वैसे शुद्ध आत्मा का दर्शन हो सकेगा। स्वानुभूत सत्य प्रामाणिक सत्य ही होता है।

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार – ये शरीर में बहुत सूक्ष्म हैं और सूक्ष्म आत्मा के लिए सब जड़ें हैं। यह शरीर स्थूल चेतना है और इसके कई स्तर हैं। चेतना का वास्तविक स्वरूप सूक्ष्म शरीर या कारण शरीर कहलाता है। मन और बुद्धि स्थूल शरीर के अन्तर्गत आते हैं।

जिस तरह आप पानी की सतह पर तैरकर एक किनारे से दूसरे किनारे पहुँचते हैं, उसी प्रकार साधक साधना की नाव पर स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर तक पहुँचता है। इसके लिए लगातार अभ्यासरत रहना पड़ता है। यह कोई क्षणभर में प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है, क्योंकि मनुष्य के संस्कार बहुत गहराई में पड़े रहते हैं, जिनका ज्ञान बचपन में नहीं होता, मगर बड़े होने पर उन्हें प्रतिक्रियाओं द्वारा देखा जा सकता है कि कितने गहरे संस्कार पड़े हैं। स्थूल शरीर में इसका ज्ञान व्यक्ति को नहीं रहता, क्योंकि व्यक्ति सदैव बाह्य जगत् के व्यवहारों में लीन रहता है। उसे अन्दर देखने की फुरसत नहीं होती, इसलिए उसे मालूम भी नहीं कि मेरे अन्दर क्या है। जिस प्रकार धूल से भरे दर्पण में चेहरा नहीं दिखता या दिखता भी है तो विद्रूप-सा दिखता है, मगर धूल को साफ करने पर जैसा चेहरा है, ठीक वैसा ही देखने को मिलता है, उसी प्रकार चित्त में संस्कार रहने से उसका रूप नहीं दिखलाई देता, परन्तु चित्त की शुद्धि करने से उसका रूप देखा जा सकता है। चित्त की शुद्धि के लिए अपने स्वभाव को जानना जरूरी है और यह साधना द्वारा ही सम्भव है।

योग में चित्त शुद्धि की बहुत-सी साधनाएँ हैं, परन्तु हर साधना का प्रभाव अलग-अलग होता है। अर्थात् कुछ साधनाएँ ऐसी हैं जिन्हें साधारण व्यक्ति नहीं सह सकता, इसलिए प्रत्येक को या जिस किसी को भी शक्तिपात नहीं कराया जा सकता, आत्म-दर्शन नहीं कराया जा सकता। सामान्यत: व्यक्ति तीन प्रवृत्तियों के होते हैं– तामसिक प्रवृत्ति, राजसिक प्रवृत्ति और सात्त्विक प्रवृत्ति। इन तीनों प्रवृत्तियों के लिए अलग-अलग साधनाएँ हैं। यदि तामसिक प्रवृत्ति के व्यक्ति को सात्त्विक बनाने के लिए उपर्युक्त साधना कराई जाएगी, तो वह पागल हो जाएगा या रोगी हो जाएगा। इसी प्रकार इसका उल्टा करने से परिणाम भी वैसा ही उल्टा पड़ता है। इसी कारण से साधक की प्रकृति के अनुसार ही गुरु उसे साधना करने की सलाह देते हैं।

'अजपा एक ऐसी साधना है जो हर प्रवृत्ति के व्यक्ति के लिए उपयुक्त है।' इसे कोई भी कर सकता है।

प्रारम्भिक अभ्यास में गुरु के निर्देशन के बिना भी उन्नति होती है। पर उच्च अभ्यासों के लिए गुरु के प्रत्यक्ष निर्देशन की जरूरत है। अजपा हर कोई कर सकता है। जो अपने जीवन का लक्ष्य जानते हैं, उन्हें इसका महत्त्व समझाने की आवश्यकता नहीं, परन्तु जो नहीं जानते हैं, वे एक बार अपने से पूछें कि उन्हें यह मनुष्य जन्म किसलिए प्राप्त हुआ है। कुछ लोग कहेंगे– खाने-पीने

और मौज उड़ाने के लिए; मगर ईमानदारी से वे अपने से पूछें कि क्या वे इस देह के द्वारा वास्तव में मौजीराम की तरह जीवन बिताते हैं। क्या उन्हें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, कोई भी कष्ट नहीं है? यदि जरा भी कष्ट है, तो इसका अर्थ है कि आप जीवन को जिस रूप में देखते हैं, वह गलत है। शरीर से खाने-पीने और मौज उड़ाने के लिए भी इस शरीर, मन और भावनाओं का ख्याल आपको करना ही पड़ेगा। क्या आप जीवन के अंतिम क्षण तक मौज उड़ा सकते हैं? नहीं, तो इसका अर्थ है आपके जीवन का लक्ष्य वह नहीं; मौज आपके जीवन की एक जरूरत है, परन्तु जीवन का लक्ष्य है समाधि।

आज समाधि का गलत अर्थ लगाया जाता है। लेकिन श्वास को रोक लेना और जमीन में कई दिनों तक पड़े रहना समाधि नहीं है। समाधि का अर्थ है चित्त का समाहित हो जाना, इन्द्रियों के अनुभवों से ऊपर उठ जाना, वह है समाधि। ज्ञान द्वारा समाधि प्राप्त होती है। जब पूर्ण ज्ञान हो जाता है, वही समाधि है। प्रत्येक व्यक्ति उसे प्राप्त कर सकता है। व्यावहारिक जीवन में सफलता के लिए व्यक्ति, चाहे वह गृहस्थ, ऑफिसर, व्यापारी, डॉक्टर या वकील कुछ भी हो, उसे कर्म में सफलता के लिए ज्ञान प्राप्ति की जरूरत है और वही समाधि की राह है। यह ज्ञान शास्त्र, पुराण आदि पढ़ने से प्राप्त नहीं होता। जो कुछ लिखा गया है – वे उनके अनुभव हैं, परन्तु आप उन्हें केवल पढ़कर प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि आपके विचार, कर्म, मान्यताएँ उनसे भिन्न हैं। उनकी प्रक्रियाएँ आप पर दूसरी हो सकती हैं। आपको ज्ञान प्राप्ति के लिए स्वयं अभ्यास करना होगा और इसे समझना होगा।

साधारणत: लोग इन सब बातों को नहीं समझते। वे सोचते हैं – हमें तो अपना कर्म करना है, घर-गृहस्थी संभालनी है। हमें इन सब पचड़ों से क्या लेना है? परन्तु आप देखेंगे कि व्यक्ति के कर्म, विचार, सिद्धान्त और परिस्थिति में विरोधाभास होने पर उसे परेशानी हो जाती है। उनके साथ वह समझौता नहीं कर पाता और वे ही समस्याओं का कारण बन जाते हैं, जिससे उसके कार्य में, व्यवसाय में बाधा उत्पन्न हो जाती है। इन सबके लिए मानसिक सन्तुलन जरूरी है। मानसिक संतुलन ज्ञान द्वारा प्राप्त होता है, बुद्धि द्वारा नहीं। उसके लिए व्यक्ति को ज्ञान मार्ग पर, योग मार्ग पर चलना होगा। अपने अन्दर के सुषुप्त ज्ञान को जगाने की विधि को अपनाना होगा। इसी के द्वारा वह अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य, समाधि की प्राप्ति कर सकता है।

कष्ट और मानसिक अनुभूति

गृहस्थ जीवन को सुखद बनाने के लिए कष्टों को जानना जरूरी है, तभी उनका निवारण संभव है।

कष्ट एक अनुभूति है जो समय, परिस्थिति और आवश्यकता के ऊपर निर्भर रहती है। एक ही कर्म को करने वाले व्यक्तियों पर उसका अलग-अलग असर देखा गया है। उसी प्रकार परिस्थिति के अनुसार एक ही कर्म का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। जैसे एक बार एक सज्जन ट्रेन में सफर कर रहे थे। उनके रुपये चोरी चले गए, अतः वे कुछ खा नहीं सके। चौबीस घण्टे के सफर के बाद घर पहुँचे तो खाना खाया और भोजन करते हुए अपने दिनभर के उपवास के लिए बार-बार परेशान हो रहे थे कि कैसे मैंने बिना खाये 24 घण्टे बिता दिए। मगर कुछ दिन बाद एक बच्चे के मुण्डन संस्कार में उन्होंने उपवास किया, उस दिन उन्हें भूख नहीं लगी। वह दिन गुजर गया, मगर उन्हें कोई परेशानी नहीं थी। अलग-अलग परिस्थितियों का असर व्यक्ति पर अलग-अलग पड़ता है।

कष्टों का मूल कारण है– आसक्ति। कर्म के प्रति, विचार के प्रति, भावना और मान्यताओं के प्रति आसक्ति से ही व्यक्ति को मानसिक कष्ट होता है। जैसे, आपके घर के सामने से लाश जाती है। आप कहते हैं, किसी की मृत्यु हो गई। मगर न आपका हृदय भर आता है, न आँखें डबडबाती हैं, न आपको उस व्यक्ति के बाल-बच्चों की समस्या का ख्याल आता है। किन्तु अपने किसी रिश्तेदार की मृत्यु पर आपकी स्थिति, आपके विचार बदल जाते हैं। यह है आसक्ति और अनासक्ति का परिणाम, परन्तु आसक्ति का कारण है अज्ञान। जब आपको यह ज्ञान हो जाए कि आप और ये ऊपरी बातें, दो अलग-अलग चीजें हैं, तो आपको यह कष्ट नहीं होगा।

आपका बाह्य जगत् से सम्बन्ध केवल एक कलाकार की तरह है, जो स्टेज पर दूसरे रूप में होता है, परन्तु स्टेज से बाहर उसका रूप ही दूसरा हो जाता है। यदि आप इस बात को समझ लेंगे, तो आपको कष्ट नहीं होगा। आप पर दुःख आयेगा ही नहीं ऐसा नहीं कहते, मगर उसके प्रति आपका दृष्टिकोण दूसरा होगा। इसके लिए आपको अपने को सूक्ष्म के साथ जोड़ना होगा, जो कि आपके अन्दर है। अपने को सूक्ष्म के साथ जोड़ने के लिए उपनिषदों में कई जगह सुझाव दिए गए हैं। हंसोपनिषद् में कहा गया है–

सर्वेषु देहेषु व्याप्य वर्तते यथा ह्यग्नि: काष्ठेषु तिलेषु तैलमिव।
तं विदित्वा न मृत्युमेति।

जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि और तिल में तेल व्याप्त है, उसी प्रकार समस्त देहों में हंसो-हंसो करता हुआ परब्रह्म विद्यमान है, जिसको जान लेने वाला मृत्यु को पार कर जाता है।

जैसे दो पत्थरों की रगड़ से अग्नि निकलती है। मथनी द्वारा मन्थन कर घी निकाला जाता है, उसी प्रकार ध्यानयोग के मन्थन द्वारा शरीर में छिपे परमात्मा को प्रकट किया जा सकता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है–

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्॥

अपने शरीर को नीचे की अरणि और ॐकार, अर्थात् प्रणव को ऊपर की अरणि बनाकर मन्थन करो। यह मन्थन है क्या? कैसे किया जाता है? इसका उत्तर है– अजपा जप। यह मन्त्र ऐसा अभ्यास है, जिसके द्वारा स्थूल का मन्थन कर सूक्ष्म को प्रकाशित किया जा सकता है।

स्थूल और सूक्ष्म

जिस प्रकार विज्ञान में प्रयोग का विषय और आधार निर्जीव एवं स्थूल वस्तुएँ हैं, उसी प्रकार अध्यात्म मार्ग में मनुष्य स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाता है। स्थूल और सूक्ष्म अलग-अलग है। दोनों एक-दूसरे में व्याप्त, एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हुए भी एक-दूसरे से अलग हैं। स्थूल से सूक्ष्म का अनुभव नहीं किया जा सकता और सूक्ष्म से स्थूल के साथ सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता। जिस प्रकार निद्रा में आपको बाह्य जगत् का कोई ज्ञान नहीं रहता, जब जग जाते हैं तब स्वप्नलोक का ज्ञान नहीं रह जाता। यद्यपि स्वप्न और जागृति की चेतना एक ही होती है, फिर भी वह दो मालूम होती है, क्योंकि हम दोनों अनुभवों को एक साथ प्राप्त नहीं कर सकते। जैसे नदी के दो किनारे नदी के अभिन्न अंग हैं, पर उसके एक किनारे पर खड़ा व्यक्ति दूसरे किनारे पर अपने आप नहीं जा सकता। उस पार जाने के लिए व्यक्ति को पुरुषार्थ, प्रयास और माध्यम का सहारा लेना पड़ेगा। इसी प्रकार स्थूल और सूक्ष्म जुड़े हुए होने पर भी कोई व्यक्ति सहज ही एक की सीमा को पार कर दूसरे तक नहीं पहुँच सकता।

हर मनुष्य अपनी आत्मशक्ति की चेतना के किसी भी जगत् में रहकर उसका अधिकतम उपयोग कर सके, यह ज्ञान और सामर्थ्य सब में नहीं रहता। साधना का मुख्य उद्देश्य है—आत्मशक्ति को सदैव सचेत रखना और आत्मशक्ति का ज्ञान हमेशा बनाये रखने की कला को प्राप्त करना कि हमारा वास्तविक स्वरूप ज्ञानमय, ज्योतिर्मय, शक्तिमय है। इस सत्य का यथार्थ ज्ञान और हर वक्त अनुभव, यही सूक्ष्म तक पहुँचने का उपाय है। साधना की डोर पकड़कर अन्दर झाँकने से वह मार्ग दिखलायी पड़ेगा।

अन्दर की खोज

आत्मा को जानने के लिये सर्वप्रथम मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की तहों को भेदना पड़ेगा। इन सूक्ष्म तत्त्वों से गुजरते समय अपनी चेतना को बनाए रखना पड़ता है। यदि इस चेतना को बनाए रखने में साधक असफल रहा, तो उसको अनुभूति का ज्ञान नहीं होगा। जैसे निद्रावस्था में हम लोग कारण शरीर में जाने पर भी उसको जान नहीं पाते, क्योंकि चेतना नहीं रहती, इसलिए उसको निद्रा कहते हैं। जाग्रत अवस्था में सूक्ष्म तक पहुँचने को समाधि कहते हैं। सूक्ष्म के ज्ञान को बुद्धि द्वारा नहीं तौला जा सकता। सूक्ष्म की अनुभूति बुद्धि के परे की चीज है। इसको जानने के लिए किताबी ज्ञान काम नहीं आएगा। उसके लिए आपको साधना की डोरी पकड़नी ही पड़ेगी, जिससे आप उन दिव्य अनुभूतियों का स्वयं अनुभव कर सकें। इसके लिए सरलतम उपाय है–प्रार्थना। प्रार्थना के लिए बुद्धि की जरूरत नहीं। वह भावाभिव्यक्ति है। और दूसरा उपाय है अजपा।

अजपा की डोरी

सूक्ष्म को पकड़ने के लिए आप 'अजपा' का अभ्यास करें। अजपा एक ऐसी डोरी है जिससे स्थूल और सूक्ष्म को जोड़ा जा सकता है। अजपा करते-करते मनुष्य की चेतना धीरे-धीरे सूक्ष्म होती जाती है और एक ऐसी भी अवस्था आती है जब मनुष्य सूक्ष्म में चला जाता है। सन्त कहते और गाते हैं कि प्राणों की डोरी में दो पंछी बंधे हुए हैं। एक का नाम सुरति और दूसरे का निरति है। ये दोनों पक्षी डोरी के सहारे ऊपर-नीचे होते रहते हैं। ऊपर-नीचे करते-करते थक कर ये हृदय कमल में एक हो जाते हैं। यही है चौथा पद, जिसके विषय में एक सन्त ने लिखा है, 'चौथा पद पाया सन्तों, चौथा पद पाया।'

सुरति और निरति मानो पक्षियों का एक जोड़ा है। सुरति शब्द का अर्थ चेतना और निरति का अर्थ है विषयों से उपरति, यानी इन्द्रियों से अपनी चेतना को धीरे-धीरे खींचते जाना और उसे सुरति में या स्वत: चेतना में परिणत कर देना, यही है आगे की साधना। यह साधना है अजपा-जप का चौथा चरण, अथवा अभ्यास।

अजपा कहाँ किया जाए?

अजपा के लिए समय एवं स्थान का ध्यान रखना आवश्यक है। उच्च श्रेणी का अभ्यास करने वाला साधक जहाँ-तहाँ बैठकर अजपा का अभ्यास न करे। साधना में जिनकी दिलचस्पी होती है और जो संस्कारी होते हैं, वे तो बहुत कम समय में ही आगे बढ़ जाते हैं। दृढ़ आत्मशक्ति तथा चिन्तामुक्त अवस्था वाले जब साधना की ओर झुकते हैं, तब दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष से उनकी प्रगति आंकना कठिन हो जाता है।

अजपा की साधना सब जगह, अर्थात् जहाँ-तहाँ अरक्षित स्थानों में नहीं करनी चाहिए। योगाभ्यास कहाँ किया जाना चाहिए, इस पर योग शास्त्रों में बहुत कुछ लिखा हुआ मिलता है। जहाँ चार हाथ के अन्दर अग्नि, जल और शिला नजदीक में न हो, उस स्थान में अभ्यास करना है। चलते-फिरते, साइकिल इत्यादि पर भी अजपा का उच्च अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए। एक बार एक व्यक्ति को अजपा की अन्तर्मुख अवस्था दुकान में काम करते समय आ गई थी। लोगों ने समझा कि वह बेहोश हो गया है और उसका डॉक्टरी उपचार करने लगे। ऐसा नहीं होना चाहिए।

साधना ऐसे स्थान पर करनी चाहिए जहाँ शरीर की सुरक्षा का प्रबन्ध हो। प्राय: लोग अपने घर में, पूजा स्थान में साधना करते हैं, पर वह भी योगाभ्यास या अजपा जप की साधना के लिए उपयुक्त नहीं। देव-आसन, दीपक, पूजा के अन्य सामान, धूपबत्ती, अग्नि या कोई कठोर वस्तु इत्यादि जहाँ पास में हो, वहाँ अजपा नहीं करना चाहिए, क्योंकि जिन्हें एक ही आसन में दृढ़ बैठने का अभ्यास नहीं होगा, उनका शरीर मन के अन्तर्मुख हो जाने पर लुढ़क सकता है। इसलिए आसन के साथ स्थान के विषय में साधक को बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए। निश्चित और सुरक्षित स्थान तथा दृढ़ आसन कर लेने के बाद सुखपूर्वक इस साधना का अभ्यास करना चाहिए।

विचार-शुद्धि

अजपा के पूर्व आंतरिक शुद्धि की भी जरूरत है। आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए। पहले चित्त को शान्त कर लें। भावना करें कि इस समय आपको दुनिया की किसी वस्तु की इच्छा नहीं है। न आप प्रेम चाहते हैं, न कोई वैभव। न आपको परिवार की चिन्ता है न मित्रों की। दुनिया को न आपकी आवश्यकता है और न आपको दुनिया की। यह सोचो कि यदि मैं न भी रहूँ तो भी दुनिया का काम पूर्ववत् ही चलता रहेगा। मेरी मृत्यु से और जीवन से दुनिया में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। सहस्रों मनुष्य रोज जीते-मरते हैं। मृत्यु समय-असमय देखकर नहीं आती। अत: जो कुछ आत्मोन्नति के लिए करना अपेक्षित है, वह मुझे अभी कर लेना चाहिए। यह आंतरिक 'मल शोधन' की क्रिया है।

मल केवल शरीर में नहीं रहता, मन में भी रहता है। अच्छे विचार या बुरे विचार नहीं, बल्कि विचार स्वयं ही मन के विकार हैं। इसलिए पहले शुभ विचार करना अच्छा होता है। राग-द्वेष का विचार हटाने के लिए पहले वैराग्य और शान्ति का विचार करना चाहिए। उसके बाद निर्विचार का अभ्यास। सब भावनाओं को हटाकर शान्त और विचारशून्य हो जाओ। जैसे किसी के आने के पूर्व स्वागत में घर के कमरों को झाड़-पोंछकर साफ किया जाता है, वैसे ही आत्म-साधना के पूर्व मन की सफाई भी होनी चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य के मन में तरह-तरह के आवश्यक-अनावश्यक विचार जमा रहते हैं। जैसे बहुत-से धागे एक साथ रखने से उलझ जाते हैं, उसी तरह दिनभर अनेक तरह के विचार आकर हम सबके मन में जमा होते हैं। बीस, चालीस और साठ वर्ष की बातें भी हमें याद रहती हैं। जो विचार या वासनाएँ (सुप्त इच्छाएँ) उनमें प्रमुख रहती हैं, वही साधना के समय प्रकट होती हैं। इसलिए यह जरूरी है कि इन सब उभरे हुए विचारों में उदासीनता का भाव लाकर मन को शान्त कर लेना चाहिए।

चित्त-शुद्धि

हिन्दू धर्म में शरीर और मन के मलों को स्वच्छ करने के लिए अलग-अलग मन्त्रों का निर्माण ॠषियों ने किया। एक तो इन मंत्रों की ध्वनि ही मधुर और गम्भीर होती है, जो मन में शांति और पवित्रता के भाव जगाती है। साथ-साथ

इनमें आत्म चेतना, आत्म प्रस्ताव या आत्म संकेत का विज्ञान निहित है। इसलिए निम्नलिखित मन्त्रोच्चारण करो।

ॐ अपवित्र: पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
य: स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तर: शुचि:॥

आत्म-शुद्धि का दूसरा मन्त्र है–

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्चमन्युप्तयश्च मन्युकृतेभ्य:
पापेभ्यो रक्षन्ताम यद्रात्रौ पापमकार्षम्। मनसावाचा-
हस्ताभ्याम् पदभ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु ।
यत्किंच दुरितं मयि। इदमहं अमृतयोनो।
सूर्येज्योतिषि ज़्होमि स्वाहा।

प्रथम श्लोक में तो यह भावना की गई कि भगवान् पुण्डरीकाक्ष के स्मरण मात्र से अन्दर और बाहर की सब अपवित्रता नष्ट हो जाती है। स्मरण का अर्थ है, सचमुच में भावना करना, जिससे पवित्रता का भाव अवश्यमेव उत्पन्न होता है। द्वितीय मन्त्र में हाथ, पैर, वाणी और मन के द्वारा रात और दिन में किए हुए सभी पापों को ज्योति में हवन कर अपने को शुद्ध करने की क्रिया बतलाई गई है।

शून्य-वृत्ति

स्थान व आसन के बाद चित्त-शुद्धि की क्रिया हुई। अब शून्य-वृत्ति लाइए। सभी प्रकार के विचारों और भावनाओं को एकदम वैसे ही मन से दूर हटा दीजिए, जैसे भौतिक जगत् में आप किसी वस्तु को अपने से परे हटाकर रख देते हैं। ये सब चीजें हैं तो सूक्ष्म और मानसिक, किन्तु मानसिक जगत् में ये उतनी ही यथार्थ हैं, जितनी भौतिक जगत् में। भौतिक वस्तुएँ यथार्थ होती हैं। स्थूल जगत् से परे जाने का या उठने का यह अर्थ नहीं होता कि उनसे दूर हट जाएँ। पर जब तक चेतना का आलम्बन केन्द्र स्थूल वस्तुएँ रहती हैं, तब तक हम स्थूल जगत् में रहते हैं, किन्तु जब यही चेतना सूक्ष्म वस्तुओं पर प्रतिरोपित या हस्तांतरित हो जाती है, तब हम इस स्थूल जगत् में रहकर मानसिक लोक में चले जाते हैं। निद्रा और ध्यान में यही होता है। मानसिक क्रिया के द्वारा अपने विचारों को अपने मानस-पटल से साधना के समय हटा देना चाहिए।

यदि दत्तचित्त होकर, बैठते ही साधना का अभ्यास शुरू कर दिया जाए तो इस चित्त-शुद्धि क्रिया की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। मनस्वी साधक एकदम से बिना तैयारी के भी साधना में डूब सकता है। किन्तु जो एक सिलसिले और क्रमवार तथा वैज्ञानिक पद्धति से जाना चाहते हैं, उन्हें तो पूर्वोक्त तरीके से अपनी तैयारी कर ही लेनी चाहिए। यह मन को निष्प्रभावी करने की क्रिया है। अत्यन्त प्रेम भाव और भक्ति भाव भी इस क्रिया का पर्याय हो सकता है। शांत और विकाररहित भाव मन में लाना और उत्पन्न करना हमारा अभीष्ट है।

साधक दो प्रकार की श्रेणी में आते हैं। एक तो वे जिनमें विश्वास प्रधान होता है और दूसरे वे जिनमें बुद्धि प्रधान होती है। विश्वास प्रधान हमेशा भक्त होता है। भक्त को सिद्धि, अर्थात् सफलता जल्द मिलती है। किन्तु क्यों और कैसे मिलती है, यह उसे नहीं मालूम होता। बस यही वह जानता है। किन्तु बुद्धिवादी 'क्यों? कैसे?' सबको समझता हुआ और विश्लेषण करता हुआ धीरे-धीरे प्रगति करता है। बुद्धिवादी, वैज्ञानिक की तरह कार्य एवं कारण में सम्बन्ध स्थापित कर किसी उद्देश्य से चलता है, पर भक्त अपनी एकाग्र भक्ति के गुण से मंजिल पर जल्द पहुँच जाने में समर्थ होता है। बुद्धिवादी नापता-तौलता है, इसलिए उसे देर लगती है।

भोजन के नियम

साधकों को अल्प, हल्का एवं पौष्टिक भोजन लेना चाहिए। साधना में बैठने के पूर्व भारी भोजन नहीं करना चाहिए। इसलिए पूजा के बाद भोजन करने का नियम है। भारी पेट में ध्यान नहीं करना चाहिए। अत्यधिक भोजन ध्यान के लिए बाधक है। भोजन के बाद ध्यान करने से पाचन-शक्ति कमजोर पड़ जाती है; क्योंकि जितना ही चित्त लय होता है, उतनी ही शारीरिक अवयवों की क्रियाएँ मन्द होती हैं। अत: अजपा के अभ्यासी को भोजन में थोड़ी सतर्कता बरतनी चाहिए। कुछ महीने तक इस यौगिक क्रिया का अभ्यास करके देखिए। इससे मस्तिष्क के स्नायुमंडल के अनेक केन्द्रों पर प्रभाव पड़ता है। इस क्रिया से कुछ को तो शान्ति, स्थिरता और पवित्रता का भान होता है, किन्तु कुछ को इस क्रिया से अनेक स्थलों पर गरमी और शरीर में खुश्की का अनुभव होता है। यदि जलन और गरमी का अनुभव हो तो गुरु को अपने अनुभव बतलाकर उनसे सलाह लेनी चाहिए।

अजपा में मन्त्र

'अपाने जुह्वति प्राणं' से आप परिचित हो चुके हैं, केवल 'प्राणेऽपानं तथापरे' को ही ध्यान में रखा जाएगा।

अजपा की साधना अगर केवल 'सोऽहं' मन्त्र में ही की जाये तो सरल या उत्तम होती है। 'सो' और 'हं' प्राणों की ध्वनि है। केवल 'मैं वह हूँ' ही इसका अर्थ नहीं होता, प्राणों को भीतर-बाहर ले जाने में ध्यान से सुनने पर सो और हं की ही आवाज मालूम होती है। इसका प्रमाण इस तरह लो–किसी बाँस की नली या खाली स्थान में हवा घुसने से 'सो' की आवाज होती है और मुँह बन्द करने पर म् की आवाज होती है, इसलिए सोऽहं को प्राणों की ध्वनि मानते हैं। जिन्हें मन्त्र समझकर 'सो' और 'हं' में श्रद्धा उत्पन्न न हो, वे इसे प्राणों की ध्वनि समझकर करें।

साधना में आगे बढ़ने के लिए उच्च साधकों को अपनी संकीर्ण भावनाओं और विचारों को तिलांजलि देनी पड़ती है। पुराने विचार और भावना को पकड़े रहने पर आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि संकीर्ण विचार भी मन के बन्धन हैं। प्रारम्भिक अवस्था में उन्हीं विचारों और भावनाओं की दृढ़ता से साधक को मदद मिलती है, पर आगे बढ़ने पर वे छूट जाती हैं या छोड़नी पड़ती हैं। जो मनुष्य ऊपर जाना चाहता है, उसे सीढ़ी से मदद तो जरूर मिलती है, पर आगे बढ़ने पर वह भी छूट जाती है या छोड़नी पड़ती है। अत: यदि अजपा अभ्यास सोऽहं के साथ ही किया जाए तो अच्छा है। किन्तु इतना कहने पर भी जिन्हें सन्तोष न हो, वे गुरु मन्त्र या इष्ट मन्त्र के साथ साधना करें। उदाहरणार्थ–राम, सीताराम, श्रीराम, राधेश्याम, ॐ नम: शिवाय, ॐ नमो नारायणाय, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ॐ ऐं ह्रीं विच्चै, क्लीं चामुण्डाये, श्री माँ, राधे, आदि में से किसी मन्त्र से करें। नुकसान किसी मन्त्र में नहीं है। मन्त्र के प्रति अटल विश्वास होना चाहिए।

वायु में अपान वायु, अर्थात् अन्दर जाने वाली श्वास में बाहर आने वाली श्वास का हवन करते हैं। सो की ध्वनि में हं की ध्वनि और क्रिया, दोनों का हवन करते हैं। इस वर्त्तमान क्रिया के अभ्यास तक आते-आते तुम्हारी श्वास और मन्त्र का अलग-अलग अस्तित्व नहीं रहना चाहिए। अत: यहाँ प्राण, मन्त्र, श्वास और मानसिक उच्चारण, ये सब एक ही क्रिया के पर्याय हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए।

हवन में अग्नि तो बराबर प्रज्वलित रहती है, पर हविष्य हर बार स्वाहा मन्त्र के साथ अग्नि में डाला जाता है। यहाँ प्राण वायु अग्नि और अपान वायु उसमें हविष्य है। इसलिए प्राण वायु तो निरन्तर अपनी स्वाभाविक गति से अन्दर जाती रहेगी, परन्तु प्रति बार 'हं' के साथ अपान वायु को बाहर झोंकना ही प्राण वायु में हवन कर देना है। इसलिए 'सो' के साथ स्वाभाविक गति से श्वास अन्दर खींचो, किन्तु 'सो' में 'हं' को मिलाने की क्रिया, हवन की भावना के साथ करनी पड़ेगी। आपको यह ख्याल रखना पड़ेगा कि आप अपान की, अर्थात् हं की आहूति दे रहे हैं। इसमें साधक को हमेशा सचेत और जाग्रत रहना पड़ेगा। एक भी आहूति अनजाने में या बिना भावना के नहीं जाने पाए।

इसे ही प्राण में अपान को हवन करना कहेंगे। हं को हमेशा चेतना के साथ बाहर लाना चाहिए। कोई भी श्वास चूकने न पाए। ऐसा करते-करते, स्थूल जगत् में सो जाएँगे और चेतना अन्दर चली जाएगी। अपनी चेतना को अन्दर ही जगाए रखने में परिश्रम तो बहुत मालूम पड़ता है, पर लगातार अभ्यास में लगे रहने से धीरे-धीरे अन्दर जगने की क्रिया मालूम पड़ने लगेगी। यदि नींद न आ जाये, तो मनुष्य सूक्ष्म लोक में प्रवेश करता है।

सूक्ष्म-लोक

सूक्ष्म-लोक में जाने का एक ही रास्ता, एक ही सुरंग या गली है, वह है ध्यान। ध्यान पहले तो साधक के लिए साध्य हैं, किन्तु आगे बढ़ने पर वह अंतर्लोक में प्रवेश करने का साधन है। पहले प्रत्याहार एवं धारणा आदि से बाहर की चीजों से रस लेने वाले मन को अंदर की ओर जाने की आदत लगाओ। आदत लगने पर उसे एकाग्रता का प्रशिक्षण दो। एकाग्रता की योग्यता प्राप्त कर लेने पर ध्यान के कमरे में घुसो। ध्यान का कमरा अंधेरी कोठरी है। जहाँ आप अपनी तस्वीर को धो सकते हैं, विकसित कर सकते हैं। जब तक बाहर का प्रकाश है, इन्द्रिय-चेतना है, आप अपनी फोटो को धोने का काम नहीं कर सकते। परन्तु बाहर का प्रकाश बाहर ही छोड़कर आप अपने अन्दर अंधेरे कक्ष में चले जाना। यही ध्यान है। बाहर का जगत् बाहर ही रहता है, किन्तु चेतना की सहायता से आप बाहर का ज्ञान प्राप्त करते हैं। उसी चेतना को लेकर जब आप अपने अन्दर के कमरे में चले जाते हैं, तब वह ध्यान है। अन्दर प्रवेश के लिए आपको रास्ते और द्वार की जरूरत है। रास्ते से चलकर

ही आप अन्दर के अंधेरे कमरे में प्रविष्ट होने का द्वार पाएँगे। अजपा-जप ही इसका रास्ता अथवा द्वार है। अजपा-जप के रास्ते से चलते रहें, जब तक आप अन्दर के कमरे में प्रविष्ट न हो जाएँ।

यदि आप बराबर चलते ही रहेंगे, तो गन्तव्य स्थान निकट आता जाएगा और मंजिल या लक्ष्य जरूर मिल जाएगा। किन्तु यदि कोई लड़का घर से स्कूल के लिए निकले, पर रास्ते में कहीं रुक जाये, तो क्या वह स्कूल पहुँच सकेगा? ऐसा ही अजपा में भी है। इसलिए केवल चलना ही नहीं, बल्कि सतत् चलते रहना है। साधना पथ में यदि अजपा करते-करते आप विचारों में भटक गये, तो आगे नहीं बढ़ पाएँगे। अजपा का नियमित अभ्यास और अभ्यास में निरंतर प्राण में अपान की सतत् आहूति चेतना के साथ चलती रहे, यह आवश्यक है।

सिद्धि का रहस्य

साधकों के लिए एक चेतावनी है। अपनी साधना की आलोचना-समालोचना मत करो। मन में दबी हुई, स्वार्थ-पूर्ण इच्छा रखकर साधना नहीं करो। यह सब उच्च साधकों के लिए ध्यान में रखने की चीजें हैं। अपनी साधना का तारतम्य और मिलान, अपने पारिवारिक, सामाजिक और राजनैतिक जगत् से नहीं करो। बाहर के जगत् में तुमको अपना कार्य और कर्त्तव्य पूर्ववत् कुशलता से निभाते चलना चाहिए।

बाहर के जगत् और अन्दर के जगत् को बुद्धि से मिलाने की कोशिश से तुम्हारे मन में अन्तर्द्वन्द्व होगा। इससे अन्तःकरण में ग्रन्थियाँ पड़ेंगी, जो ध्यान में विक्षेप उत्पन्न करेंगी। विक्षेप दो प्रकार के होते हैं—बाह्य विक्षेप और आंतरिक विक्षेप, दोनों से ही साधक को अपने को बचाना चाहिए।

बाह्य जगत् में हमें पूरे कर्म-कौशल के साथ ही अपने कर्म को करना चाहिए। यदि पूरी कुशलता के साथ काम करने की इच्छा एवं आदत और साथ-साथ अजपा का अभ्यास भी जारी रहेगा, तो उसी कर्म-साधना के माध्यम से प्राप्त दिव्यत्व को बाहर निकलने का मौका मिल सकेगा। साधक को अभी साधना के विषय में किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प नहीं करना चाहिए। केवल गुरु और साधना पर श्रद्धा रखकर अपना काम समझकर करते जाना चाहिए। बाह्य जगत् में साधक यदि अपने सभी दायित्वों को यथाशक्ति निभाता जाएगा, तो मन में कभी अन्तर्द्वन्द्व नहीं होंगे। अन्तर्द्वन्द्व साधना का

सबसे बड़ा शत्रु है, जो साधक इस प्रकार आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं, उनके लिए सभी आवश्यकताएँ और सुयोग समय पर भगवान स्वयं जुटाते जाते हैं। साधक को अपनी सभी इच्छाओं और चिन्ताओं का बोझ भगवान पर छोड़कर कर्म और साधना में जुट जाना चाहिए।

इन दोनों कार्यों को करने से मानसिक सन्ताप या अन्तर्द्वन्द्व होता ही नहीं, जो प्राय: साधना के मार्ग पर चलने वालों को हुआ करता है। इस तरह अन्दर और बाहर, दोनों में शुद्धता रह सकेगी और साधना में आशातीत प्रगति भी हो सकेगी। अन्तर्द्वन्द्व, चिन्ता, अनावश्यक सोचने की आदत, ये सब मन के मैल हैं, जिन्हें कर्मों द्वारा शुद्ध करने की बात शास्त्रों ने कही है। परन्तु मैंने देखा है कि बुद्धि से तो मनुष्य सब कुछ समझ लेता है, और उन्हें ठीक भी मान लेता है, फिर भी कर्म और व्यवहार में इन विचारों को नहीं ला पाता। इसका कारण है इच्छा-शक्ति की कमी और दृढ़ निश्चय का अभाव।

फिर भी यदि इच्छा-शक्ति को ही बढ़ाने की साधना की जाये, तो वह ठीक नहीं। साधना में सब कुछ स्वयं प्राप्त हो जाता है। सबसे सरल, सीधा और संक्षिप्त रास्ता है, गुरु में श्रद्धा। केवल गुरु में श्रद्धा और विश्वास से सभी अनिवार्य योग्यताएँ और विशेषताएँ अपने आप चली आती हैं। गुरु एक अनुभवी सहयात्री होता है। उसे मार्ग का पूरा पता रहता है। जो काम मनुष्य स्वयं नहीं कर पाता, उसे गुरु के आदेश-मात्र से करने में समर्थ हो जाता है, क्योंकि गुरु में उसकी श्रद्धा और भक्ति होती है। इसलिए गुरु को साधना पथ में अनिवार्य माना गया है।

हर काम के लिए एकाग्र-भक्ति होनी आवश्यक है। यही है साधना और सिद्धि का रहस्य।

साधना में सहायक और कुछ जरूरी बातें भी मैंने यहाँ बतलाई हैं। अब अभ्यास शुरू करो और उस अन्धकार गृह में पहुँच कर अपने इष्ट की तस्वीर विकसित करो। वहाँ पहुँचने पर वहाँ की बातें स्वयमेव तुम्हें मालूम पड़ेंगी।

अजपा जप में गुरु की आवश्यकता

सामान्यत: यह कह दिया जाता है कि योग में अजपा जप ही एक ऐसी साधना है, जिसका अभ्यास बिना गुरु के करते हुए समाधि की अवस्था प्राप्त की जा सकती है। परन्तु इसका वास्तविक तात्पर्य मन्त्र से है, याने बिना गुरु मन्त्र प्राप्त किए सोऽहं या ॐकार से ही अजपा जप का प्रारम्भ किया जा सकता

है। वास्तव में अजपा जप के अभ्यास में गुरु के मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि अक्षर ज्ञान एक सामान्य सी बात है, पर छोटा-सा बालक उस कार्य को अध्यापक के बिना यदि अकेला ही पूर्ण करना चाहे, तो नहीं कर सकता। भले ही वह कितना मेधावी क्यों न हो। यदि कोई रोगी अपने आप ही अपने रोग का इलाज करने लगे, तो उसमें भूल होने की सम्भावना रहेगी। अत: अनुभवी चिकित्सक की शरण लेनी ही पड़ती है। ठीक इसी तरह आध्यात्मिक मार्ग में गुरु की आवश्यकता पड़ती है।

साधक अपने गुण-दोष, मानसिक स्तर तथा आध्यात्मिक विकास का पता भी अपने आप नहीं लगा सकता। अनुभवी गुरु ही इस सम्बन्ध में मार्गदर्शन कर सकता है और उसी के द्वारा उद्धार एवं कल्याण का मार्ग मिल सकता है। जिसने रास्ता स्वयं देखा है, मंजिल तक पहुँचा है या जिसने मंजिल पार कर ली है, वही रास्ते की सुविधा-असुविधा को जानता है। नये पथिक के लिए ऐसे अनुभवी व्यक्ति की सलाह जरूरी है।

साधना का मार्ग तलवार की धार के सदृश है। जब शिष्य साधना में अग्रसर होता है, तब अनेक बाधाएँ तथा पुराने संस्कार विघ्न डालते हैं। साधक दिशा भूल जाता है। उसकी बुद्धि ऊब जाती है। ऐसे समय पर गुरु के मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। सिद्ध गुरु चेतना की उच्च भूमिका में रहते हैं। अत: ऐसे समय पर गुरु का मार्गदर्शन मिल जाता है। यदि शिष्य में गुरु के प्रति समर्पण की भावना है, तो गुरु क्षणभर में मोक्ष तथा असीम ज्ञान का मार्ग खोल सकते हैं। इन्हीं अद्‌भुत शक्तियों के कारण सभी प्राचीन शास्त्रों में गुरु में एक साथ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की क्षमता बतलाई गई है। शिवपुराण में कहा गया है–

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
तस्माद्धि श्रीगुरोर्भक्तिः भुक्तिमुक्ति प्रदायिनी॥

शिष्य की गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा होनी चाहिए और गुरु भी ऐसे हों कि वे आत्म-कल्याण का मार्ग ही न बतलाएँ, वरन् उस पर चल सकने योग्य साहस, बल और उत्साह का संचार करें। इसलिए गुरु का चयन करते समय उनकी विद्या ही नहीं, आध्यात्मिक स्तर, तप, त्याग आदि संगृहीत पूँजी को देखना पड़ता है। यदि वे इन गुणों से सम्पन्न न हों तो उन्हें अध्यात्म मार्ग का उपदेशक भले ही कहा जा सकता है, गुरु नहीं। परन्तु शिष्य का भी यह कर्त्तव्य

है कि यदि वह वशिष्ट, व्यास, द्रोणाचार्य, रामकृष्ण और शिवानन्द की तरह सिद्ध गुरु चाहता है तो उसे भी राम, एकलव्य, आरुणि और विवेकानन्द की तरह शिष्य बनना होगा। गुरु भी शिष्य को अच्छी तरह परख कर उसकी पात्रता का मूल्यांकन करते हैं। यदि शिष्य गुरु के मापदण्डों के अनुरूप न हो तो उसे उच्च ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। गुरु शिष्य की अनेक विधियों से परीक्षा लेकर उसकी क्षमताओं तथा गुरु-भक्ति की परख करता है, ताकि उसका परिश्रम व्यर्थ न जाए। कभी-कभी गुरु आध्यात्मिक साधना एकदम बन्द कराकर केवल शारीरिक परिश्रम कराता है। कभी प्यार देता है और कभी घोर उपेक्षा करता है, उससे बात करना तो दूर रहा, उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। ऐसे समय पर शिष्य का धैर्य टूट जाता है, वह गुरु का अपमान करने लगता है। उसके मन में अनेकानेक सन्देह भाव उठने लगते हैं, परन्तु गुरु का शिष्य के साथ आन्तरिक सम्बन्ध बहुत ऊँचे स्तर का होता है। इन सब परीक्षाओं के पीछे सचाई कुछ और होती है, वह उच्च साधनाओं के लिए शिष्य के मन को तैयार करता है।

इस प्रकार गुरु, शिष्य को भौतिक स्तर से आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचने का मार्गदर्शन करते हैं। योग्य शिष्य को दिव्य प्रकाश तथा ज्ञान से सम्पन्न कर लोक मंगल के लिए तैयार करते हैं। गुरु की महत्ता पर आदिगुरु शंकराचार्य ने शतश्लोकी में लिखा है –

'इस त्रिभुवन में ज्ञानदाता सद्‌गुरु के लिए देने योग्य कोई दृष्टांत भी दिखलाई नहीं देता। उन्हें पारसमणि की उपमा दें, तो भी यह ठीक नहीं जँचती। पारस तो लोहे को सोना बना देता है, पर पारस नहीं बनाता। परन्तु सद्‌गुरु शिष्य को अपने समान ही बना देते हैं।'

अजपा का रोगों में प्रयोग

अजपा की विभिन्न साधनाएँ बतलाई जा चुकी हैं, उससे अर्जित अध्यात्म-शक्ति का उपयोग यदि तुम नहीं करोगे तो वह कुण्ठित हो जाएगी। अजपा के द्वारा अपनी बीमारियों को कैसे अच्छा किया जाये, यह तरीका तुम्हें बतलाया जाएगा। इसका प्रयोग करो।

बीमारियाँ क्यों, कैसे और कितनी होती हैं? सोचो तो, बीमारियाँ तनावों के कारण होती हैं। शरीर, मन और भावनाओं पर रोज ही अनुकूल और प्रतिकूल आघात पड़ते रहते हैं, यही रोग का कारण है।

तनाव तीन प्रकार के होते हैं—शारीरिक तनाव, मानसिक तनाव और भावनात्मक तनाव। इन्हें ही कहते हैं, आधिभौतिक और आध्यात्मिक ताप।

शारीरिक तनाव अत्यधिक श्रम और लगातार एक ही प्रकार का श्रम करने से होता है। शारीरिक तनाव अनिच्छापूर्वक काम करने से भी होता है या मैं परिश्रम कर रहा हूँ, इस भावना के कारण होता है। यदि मनुष्य श्रम शब्द भूल जाए, तो वह सिर्फ दो या एक समय भोजन और सिर्फ तीन घण्टे का शारीरिक विश्राम लेकर शेष समय में काम कर सकता है। अधिक सोने, दिन चढ़े तक सोने, अधिक खाने और व्यायाम नहीं करने से तथा तामसिक भोजन से भी तनाव होता है।

स्नायविक तनाव दूर करने का सरल तरीका है योगासन। पन्द्रह मिनट प्रतिदिन सुबह-शाम योगासनों के अभ्यास से शरीर की बैटरी पुनः चार्ज हो जाती है। मनुष्य जब काम करते-करते थक जाता है, तब अंगड़ाई लेकर शरीर तोड़ता है। लिखते-लिखते हाथ थक जाए, तो हाथ को झटकारता है, अंगुलियाँ तोड़ता है। एक काम छोड़कर दूसरा काम करता है, चाहे वह टहलना हो या गाना हो या सिनेमा हो या कुछ और, अपने काम और भाव के अनुसार मनुष्य एक काम का दूसरा काम बना लेता है। किन्तु सचमुच देखा जाए तो बदलने के नाम पर न तो उसके पेशीय तनाव कम होते हैं, न मानसिक और न भावनात्मक, क्योंकि विश्रांति का हमारा तरीका ही गलत है। इसलिए कुछ दिनों के अत्यधिक परिश्रम के कारण मनुष्य बूढ़े हो जाते हैं और मृत्यु की चार चिट्ठियाँ (नेत्र-ज्योति का क्षीण होना, दाँत टूटना, बाल का सफेद होना, अंगों का बेकार होना) प्राप्त करते हैं। शारीरिक तनाव एक ही वातावरण में घुटे रहने या बहुत ज्यादा मेहनत करने से भी होता है।

मानसिक तनाव बहुत ज्यादा सोचने से होता है। सोचना तो वही चाहिए, जिसके बारे में मनुष्य को सोचने की जरूरत हो, परन्तु सभी लोग काम की बातें कम और बेकाम की बातें अधिक सोचते हैं। इसलिए तनाव होते हैं। सिर्फ काम की बातें सोचने से तनाव नहीं हो सकता, क्योंकि वह किसी माध्यम से प्रकट हो जाता है। कर्म, वाणी और लेखनी द्वारा मानसिक तनाव दूर होना चाहिए। मनुष्य पिछली बातों और घटनाओं पर बहुत अधिक सोचता है। किसी से झगड़ा हुआ, कोई दुर्घटना हो गई, किसी ने गाली दी, तो सोचना चालू हो जाता है। सोचने से मानसिक तनाव पैदा होते हैं, जिन्हें तुम देख नहीं पाते और न उन्हें दूर करने का तुमको कोई तरीका मालूम है।

बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, व्यापारी और बुद्धिजीवी, सभी मानसिक श्रम करते हैं, पर खर्च की हुई मानसिक शक्ति की पुन: आपूर्ति कर लेने का कोई साधन नहीं जानते। इसलिए युवावस्था पार करते ही रोग, कमजोरी, सफेद बाल, आदि लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

अत्यधिक मानसिक तनाव बढ़ जाने से दिमागी ताकत का सुन्न हो जाना लाखों की तादाद में देखने को मिलता है। मानसिक तनाव के बढ़ जाने से शिराएँ फटने लगती हैं, आँखें कमजोर होती हैं, कब्ज रहती है, डकारें आती हैं, सिगरेट पीने को जी चाहता है, चाय की याद आती है, और जब शारीरिक एवं मानसिक तनाव मिलकर आते हैं, तब काम और वासना के आवेग भी आते हैं।

शारीरिक तनाव तो रात के विश्राम से दूर हो जाते हैं, किन्तु मानसिक तनाव नींद में भी रहते हैं। प्रशान्तक दवाएँ लेने से दबते नहीं, जाते नहीं, वरन् बीज बन जाते हैं। बाद में विषाद लाते हैं और विषाद को दूर करने के लिए साधारण व्यक्ति के जीवन में सुरा और सुन्दरी तक आ जाती हैं।

बीमारी का तीसरा कारण है, भावनाओं का तनाव। मनुष्य भावनाओं के थपेड़े खाता रहता है। हर वस्तु के साथ वह केवल बुद्धि और ज्ञान का भाव नहीं रख पाता। भावनाएँ यथार्थ न होने पर भी, मनुष्य उनसे चिपका रहता है और जब भावनाओं पर ठेस लगती है तब प्रतिक्रिया-स्वरूप रोग का जन्म होता है।

यदि किसी का प्रिय, मित्र, पुत्र, स्त्री, सम्बन्धी अगले दिन कहीं दूर से आने वाले हों तो उसे रातभर नींद नहीं आएगी। एक घण्टे के बाद परीक्षा-फल घोषित होने वाला होगा तो दिल तेजी से धड़कना शुरू हो जायेगा। रात को एकाएक बेटे को हॉस्टल में घर की याद आती है। मोरार जी ने गोल्ड-पालिसी घोषित की तो लाखों सुनार कैसे सोचते और चलते होंगे? तुम हर लड़की पर ध्यान अटकाए रहते हो तो तनावों का क्या होता है? अष्ट ग्रह में लाखों-लाख लोग भावनात्मक तनावों से कसे तने थे? भावनात्मक तनाव से हृदय रोग होने लगते हैं।

भावनात्मक तनाव अनजाने व्यवहारों में प्रकट होते हैं। कुछ लोग अपने पैरों को बराबर हिलाते रहते हैं। कुछ कन्धे उचकाते रहते हैं। कुछ लोग सीटी देते या गुनगुनाते रहते हैं। कुछ लोग अन्य कई प्रकार के व्यवहार, जैसे बार-बार पलक झपकाना, नाक फूँकना, आदि अनजाने में अपना लेते हैं। यह सब

अस्वाभाविक और अनावश्यक बर्ताव मनुष्य के अन्दर के तनाव को व्यक्त करने के लिए होते हैं। तनाव तो होते ही रहेंगे, जब तक मनुष्य को पूर्ण वैराग्य न हो। गृहस्थ तो तनाव से बच नहीं सकते।

बीमारी का कारण केवल स्नायविक या मानसिक या भावनात्मक या किन्हीं दो या तीन प्रकार का तनाव हो सकता है। तनाव के समय नाड़ियों में खून का प्रवाह अधिक हो जाता है, जिससे उच्च रक्त चाप भी हो सकता है। यदि समय पर इसे रोका न गया तो इससे लकवा भी हो सकता है।

कभी स्नायविक तनाव, कभी भावनात्मक तनाव, तो कभी तीनों के मिश्रित कारण से रोग होता है। कोई व्यक्ति ऑफिस से आकर अपनी पत्नी और बच्चों पर बिगड़ता है, तो उसका कारण कभी शारीरिक तनाव होता है, तो कभी मानसिक या भावनात्मक तनाव। थका रहने के कारण वह क्रोध करता है। चिन्ता के कारण वह क्रोध करता है। इसी प्रकार दिमागी उलझन से भी मनुष्य को सरदर्द, कब्ज, एसीडिटी, दिल का दर्द, आदि रोग होते हैं।

जब व्यक्ति अपने को उपेक्षित समझता है और भावनाओं की तुष्टि नहीं हो पाती है, तब उसे संक्रामक रोग पैदा हो जाते हैं, जैसे, टी.बी., कुष्ठ रोग, दमा, अथ्राईटिस, इत्यादि।

फिर क्या हो? इन तनावों को दूर करने की मनोवैज्ञानिक पद्धति तुम्हें अपनानी पड़ेगी। मनोवैज्ञानिक और यौगिक पद्धति है – अजपा-जप का अभ्यास।

अजपा के अभ्यास से उपर्युक्त तीनों प्रकार के तनाव दूर होते हैं। अजपा से विश्राम मिलता है और चेतना भी रहती है, पर यह कैसे?

अजपा करते-करते व्यक्ति पहले दैहिक तनाव दूर करता है। दैहिक शांति होने पर वह अपने अन्दर के कमरों में एक-एक कर प्रवेश करता है। अन्दर जाने पर उसे चेतना के कई स्तर मिलते जाते हैं। इन सबको हम देवलोक कहते हैं। सूक्ष्म और कारण-देह से मनुष्य की चेतना ही कार्य करती है। चेतना के विभिन्न स्तर तीन विभागों में बाँटें जाते हैं। भूलोक, भुवर्लोक और सुवर्लोक। इन तीनों के बाद का जो स्तर है, वह सत्य लोक है, किन्तु सत्य लोक में कोई वृत्ति नहीं रहती, सिर्फ चेतना ही प्रज्ञान-धन-चैतन्य के रूप में रहती है।

दैहिक ताप खतम होने पर मनुष्य के पूर्वचेतन के तनाव विचार रूप में प्रकट होते हैं। जो-जो बातें व्यक्ति के अन्त:करण में रहती हैं, वे विचार और सम्बन्धित विचारों के माध्यम से आने लगती हैं। विचार रूप में मन के अन्दर की चीजें ही सामने आती हैं। उनके आने से घबराना नहीं चाहिए और न

उन्हें रोकना चाहिए। उन्हें प्रकट होने देना चाहिए। लोगों का यह कहना और समझना गलत है कि विचारों पर नियंत्रण होना चाहिए, नियंत्रण करना तो दबा देना है, जो कभी भी फिर प्रकट होगा और पनपेगा जरूर।

अजपा के द्वारा तनाव दूर होते हैं, शिथिलीकरण होता है और जितना गहरा शिथिलीकरण होगा उतने ही दबे हुए संस्कार प्रकट होते जाएँगे। ये दबे, पुराने संस्कार मनुष्य की चेतना के हर स्तर पर रहते हैं। अजपा के द्वारा मनुष्य जितनी गहराई में उतरता जाएगा, वहाँ-वहाँ के संस्कार उसके सामने प्रकट होते जाएँगे। चेतना के विचार, पूर्वचेतना के संस्कार, फिर अवचेतन की वासना, फिर अचेतन की अविद्या। इन संस्कारों के प्रकट होने पर इन्हें रोकना कभी नहीं चाहिए, बल्कि अजपा के द्वारा इनकी निकासी होनी चाहिए।

दबे हुए संस्कार पहले विचार, फिर स्वप्न, फिर यौगिक स्वप्न के रूप में प्रकट होते हैं। जब संस्कार प्रकट हों तो तीन बातों का ख्याल रखना चाहिए। पहला, नींद न आने पाए; दूसरा, अजपा का तार न टूटे; तीसरा संस्कारों को भी द्रष्टा की भाँति देखते हुए चलो। ऐसा करते-करते तुम्हारी चेतना के एक-एक स्तर के संस्कार प्रकट होकर खतम होते जाएँगे और तुम चेतना की अन्य गहराइयों में उतरते जाओगे। जैसे-जैसे चेतना की गहराई में प्रवेश करोगे, वैसे-वैसे गहरे तथा आदिम संस्कारों का दर्शन होता है।

जो कुछ भी स्वप्नों में तुम्हें दिखे, उससे घबराना नहीं चाहिए। शेर दिखे, आग दिखे, दुर्घटना दिखे, अस्वाभाविक चीजें दिखें; सब देखते जाइये, क्योंकि इनमें बाहर का कुछ नहीं, सिर्फ तुम्हारी चेतना की ही सब चीजें हैं, तुम्हारे अन्दर की दबी हुई वासनाएँ हैं, जो प्रकट हो रही हैं।

तुम जो कुछ देखते, सुनते और विचार करते हो, केवल उन्हीं से तुम्हारे संस्कार नहीं बनते, बल्कि तुम्हारी दृष्टि, श्रुति, स्पर्श और गन्ध के क्षेत्र में जितनी चीजें आती हैं, वे सब संस्कार बनकर अन्दर में जमा होती जाती हैं।

तुम कहीं टहलने गए हो और सीधे सामने की ओर देखते जा रहे हो, अगल-बगल की चीजें तुम नहीं देख रहे हो, तो भी तुम्हारी दृष्टि के क्षेत्र में जितनी चीजें आयेंगी, उन सबका अक्स तुम्हारे सूक्ष्म-शरीर में संस्कार बनकर रहेगा। यदि कोई कच्चा मांस खा रहा है और तुमने उसे देखा नहीं, किन्तु तुम्हारी दृष्टि के अन्दर वह आया है, तो उसका भी संस्कार तुम्हारे मन पर पड़ेगा। चेतन मन का उत्तर तो बस यही होगा कि तुमने व्यक्ति को कच्चा मांस खाते नहीं देखा, परन्तु नेत्रों के लेंस तो ऐसे हैं कि इसकी सीमा के अन्दर जो

कुछ भी आएगा, उन सबकी छाया अन्त:करण में जमा होती जाएगी और वह प्रकट होती है केवल पूर्ण शान्ति की अवस्था में।

शान्ति जैसे-जैसे गहरी होती है, पिछली सब देखी-अनदेखी बातें प्रकट होती हैं। इसको प्रकट कर देने से संस्कारों का नाश, अर्थात् सफाई होती है। इसलिए मनोवैज्ञानिक पहले रोगी को विश्रांत करवाते हैं। विश्रांति जितनी गहरी होती जाती है, उतनी ही मनुष्य की स्मृति भी गहरी, पुरादर्शी होती जाती है। जितनी पुरानी बातें याद आती जाती हैं, उतनी ही समझिये कि चेतना गहरी है। जैसे-जैसे शान्ति गहरी होगी, वैसे-वैसे चेतना का स्तर भी बदलता जाएगा।

अजपा इसी विश्रांति और शान्ति या विश्राम की एक परम सहज साधना है। अजपा में अचेतावस्था नहीं आती। चेतना रहती है, पर बाहर के जगत् में न रहकर अन्दर के जगत् में। यह चेतना अजपा के अभ्यास के माध्यम से लोक-लोकान्तरों को पार करती हुई आगे बढ़ती जाती है। मनुष्य की स्मृति तेज हो जाती है, 'संवेदनशीलता' बढ़ जाती है और पीछे की सब बातें धीरे-धीरे याद आने लगती हैं। दो वर्ष, चार वर्ष, दस, बीस, चालीस, अस्सी वर्ष पीछे की भी घटनाएँ और स्मृतियाँ ताजी होती जाती हैं। मनोवैज्ञानिक उन्हीं घटनाओं के आधार पर व्यक्ति की बीमारी को ढूँढ निकालते और पुन: विपरीत-सुझाव के द्वारा समाप्त कर नए संस्कार डाल देते हैं। गर्भावस्था की ही नहीं, बल्कि पूर्वजन्म की स्मृतियाँ भी गहरे विश्राम में जगने लगती हैं। गुरु पक्का और चेला सच्चा हो, तो यह अवस्था बड़ी सरलता से आती है, बड़ी जल्दी जाती है।

हिन्दू मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य ध्यान की जितनी गहराइयों में उतरता है, उसी के हिसाब से उसके भूत और भविष्य के संस्कार प्रकट होते हैं। न केवल इस जन्म की बीती घटनाओं की स्मृतियाँ आती हैं, बल्कि पूर्वजन्म के सारे संस्कार यथाक्रम प्रकट होते हैं। जैसे-जैसे चेतना बाहर से हटकर अन्दर आएगी, वैसे-वैसे भूत–भविष्य का रिकार्ड खुलता जाएगा।

पूर्वजन्म के संस्कारों के प्रकट होने के कारण का तो तुम अनुमान लगा सकते हो, परन्तु भविष्य के संस्कारों के बीज भी मनुष्य स्वयं तैयार करता रहता है। जिस तरह विश्रांति में स्मृति तीव्र होती है, उसी तरह दृष्टि का भी विस्तार होता है। मनुष्य की कल्पना शक्ति ऊपर उठकर एक स्वरूप बना लेती है या देख लेती है कि आगे कुछ वर्षों के बाद क्या घटने वाला है।

एक व्यक्ति है। उसकी कई लड़कियाँ हैं। उसे उनके बचपन से ही विवाह की चिन्ता शुरू हो जाती है। इसी तरह एक संस्कार पैदा हो जाता है। यह भविष्य का संस्कार है, जो कभी-कभी किसी रूप में स्वप्न या ध्यान में उतरता है। इसी प्रकार पत्नी के मन में पति, पुत्र तथा सम्बन्धियों को लेकर भविष्य के संस्कार पहले तैयार रहते हैं। ऐसे ही संस्कार सबके अंत:करण में रहते हैं, जो घटने के पहले ध्यान में प्रकट हो जाते हैं। अजपा के द्वारा विश्रान्ति लाने पर दोनों बातें होती हैं—पूर्व की घटनाएँ, दबी हुई हर एक इच्छा, हर एक विचार, साथ-साथ भविष्य के संस्कार भी स्पष्ट दिखते हैं।

अजपा में जब भूत, भविष्य के संस्कार प्रकट हों तो तुम उन्हें बस देखते भर जाओ और स्मृति में नोट भी करते रहो। अन्दर से बाहर आने पर उन सब अनुभवों को नोट कर लो या गुरु से कह दो। संस्कारों को देख भर लेने से ही वे नहीं मिटते। उन्हें डायरी में नोट करो या गुरु से कहो। तब गुरु आदेश देगा कि क्या किया जाए।

संस्कार एकदम तो नहीं मिटते। निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करने तक रहते ही हैं, किन्तु उनका बोझ अवश्य हल्का हो जाता है। इन संस्कारों को निकाल देने से रोग की जड़ कट जाती है। इसलिए अजपा का अभ्यास हर एक आदमी के लिए बहुत जरूरी है। इसके साथ ही तुम संकल्पों के द्वारा अपने दोषों को दूर कर सकते हो। रोगों को दूर करने के लिए व्यक्ति को अजपा का अभ्यास इस प्रकार करना चाहिए।

पहले आसन में बैठकर अजपा करो और जब अर्ध-जागृति और अर्ध-निद्रा सी मालूम पड़े, उस समय कुछ संकल्पों के द्वारा अपने अन्त:करण में ऐसे संस्कार भरो, जिन्हें तुम अपने अंदर लाना चाहते हो। उदाहरण के लिए, 'मैं सिगरेट की आदत छोड़ दूँगा', 'मैं चिन्ता नहीं करूँगा', 'मेरा स्वास्थ्य ठीक है', 'मैं अच्छा हो रहा हूँ', 'मुझमें दिव्य शक्ति भर रही है'।

अन्त:करण जब अन्दर चला जाता है उस समय उसे जो कुछ भी आज्ञा तुम देते हो, वह तुरन्त ही ग्रहण कर लेता है। इसलिए रोग उपचार के लिए भी अजपा जप का अभ्यास शुरू कर देना चाहिए। अन्त:करण में जहाँ ग्रन्थियाँ होंगी, जहाँ रोग के संस्कार दबे होंगे, जहाँ भावनाओं को ठेस पहुँची होगी या दैहिक चोट लगी होगी—उन सबके संस्कार स्मृति दृश्य बनकर चेतना की सतह पर आएँगे तथा वे सब प्रकट हो जाएँगे। संस्कारों को दो रास्तों से

हल्का किया जा सकता है, वैराग्य से अथवा ध्यान में प्रकट कर देने से। इस तरह तुम अपना उपचार खुद कर सकते हो।

अजपा का अभ्यास दिन में तीन बार किया जा सकता है। इसका पहला अभ्यास प्रात:काल चार बजे से छ: बजे तक करो। प्रात: छ: बजे के बाद की साधना को विस्तृत करने और अन्दर जाने के लिए बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है, फिर भी सफलता यदा-कदा ही मिलती है, किन्तु प्रात: तीन या चार बजे के अभ्यास में श्रम नहीं लगता और न दिन के बराबर समय। निद्रा से उठने के कारण मन स्वयं अन्दर रहता है और बहिर्मुखी नहीं होना चाहता। अन्तर्मुख अवस्था में जो कुछ किया जाएगा, वह तुरन्त अन्दर चला जाएगा। ऐसे समय में ही उठकर पहले अजपा का अभ्यास करो, उसके बाद शुभ विचार और संस्कार अपने अन्दर भरो। इस तरह प्रात:काल दो घण्टे या एक घण्टे रोज अजपा का अभ्यास रोगोपचार के लिए करो। गत दिवस के तनावों के शान्त हो जाने के कारण प्रात:कालीन अजपा से बड़ी शक्ति मिलती है।

अजपा का दूसरा अभ्यास सन्ध्या के समय होना चाहिए। कार्य समाप्त कर घर आते ही पहले आराम कुर्सी पर बैठो। पैरों को फैला लो और आरामदायक स्थिति में बैठो या अधलेटे रहो। आधे घण्टे चन्द्रांग या सूर्यांग अजपा करो। अजपा को साधुओं की साधना न समझ कर विश्राम की विधि समझो। बीच में स्वप्न या संस्कार दिखें, तो उन्हें देखते जाओ, मन में नोट करो और बाद में लिख भी लो। इसके बाद उठकर हाथ-मुँह धोओ, घर के काम-काज में लगो, बीबी-बच्चों की फरियाद सुनो, जलपान करो या जो कुछ भी करना हो करो। इतना यह नियम बनाओ कि बाहर से घर में आते ही पहले अजपा और स्वास्थ्य के संस्कार भरो।

तीसरी बार रात में सोने के समय लेटकर अजपा का अभ्यास करो। रात में अजपा लेटकर किया जा सकता है, किन्तु प्रात: नहीं। रात में अजपा करते-करते सोओ, किन्तु निद्रा और जागृति की देहरी पर पहुँचते ही अपने निश्चित संकल्पों को दुहराओ। अन्त:करण को आदेश देना, नीरोग होने की आज्ञा देना मत भूलो। सुबह और शाम की अजपा में तुम्हें नींद को रोकना है, अजपा करते-करते कहीं नींद न आए, इसका ध्यान हमेशा रखो।

अत: प्रात:काल की अजपा निष्ठापूर्वक आसन में बैठकर ही करो। सन्ध्या में किसी आरामदायक आसन में, किन्तु लेटकर सोने के पूर्व करो और करते-करते संकल्प दुहराने के बाद सो जाओ।

अजपा केवल पूजा और जप का तरीका नहीं है। अजपा केवल साधना नहीं है। अजपा सिर्फ समाधि की साधना नहीं है। अजपा सिर्फ प्राणायाम नहीं, फिर क्या है अजपा?

अजपा, अगर तुम्हें नींद नहीं आती हो तो वह 'ट्रेंक्विलाइजर' है। यदि हार्ट की बीमारी हो तो अजपा है 'कोरेमिन' और अगर तुम्हें सिर में दर्द है तो अजपा बनेगी 'एनासिन'। यदि तुम्हें मोटापे का रोग है तो अजपा चर्बी को जला देगी।

कहने का मतलब यह है कि अजपा रामबाण है। हर रोगों की अचूक दवा है, क्योंकि यह शरीर के आधारभूत तत्त्वों, क्रियाओं, बनावट तथा अवयवों से सीधा सम्बन्ध रखने वाली है। जिस तरह यदि रक्त संचरण का कार्य रुक जाय तो शरीर में कोई कार्य सम्पादित नहीं हो सकता, सब अंगों के ठीक-ठाक कार्य करने का रहस्य केवल रक्त परिभ्रमण है। इसी प्रकार 'अजपा' भी मनुष्य के सब कोशों को पोषित करने वाला तत्त्व है।

एनासिन, ट्रेंक्विलाइजर, कोरेमिन इत्यादि केवल शारीरिक उपचार ही करते हैं। तेज दवाएँ जहाँ एक अंग के रोगों की दवा होती हैं, वहाँ दूसरे अंगों पर भी उनका असर होता है, जहाँ उसकी जरूरत नहीं है। दवाएँ हमारे रक्त में मिलकर शरीर के सब अंगों में पहुँचती हैं। इन दवाओं से रोग में तत्काल फायदा तो होता है, परन्तु रोगों के मूल कारण दूर करने में वे असमर्थ होती है। शरीर में जो भी रोग होते हैं, उनका कारण हमेशा कुछ और होता है। सिर दर्द हो तो उसका कारण कुछ और हो सकता है, जैसे, कब्ज इत्यादि। ज्वर हो तो उसका कारण कुछ और होगा। शरीर के किसी-किसी अंग में चोट या पीड़ा होने से भी ज्वर होता है। अत: ज्वर कई कारणों से हो सकता है। इसी तरह बीमारियों का केवल शारीरिक कारण नहीं होता, बल्कि मनोवैज्ञानिक कारण भी होता है, किन्तु मानसिक कारणों के उपचार का तरीका डॉक्टरों को नहीं मालूम और न वे प्रयोग करते हैं।

रोगों का कारण मनुष्य की अतृप्त इच्छाएँ भी रहती हैं, जिनकी पूर्ति एवं निराकरण का साधन न डॉक्टरों के पास है, न घरवालों के पास और न समाज के पास। पुन: रोग का कारण मनुष्य के मानसिक विकार—काम, क्रोध, मोह, मद और लोभ होते हैं। इसके लिए कोई उपाय और उपचार दुनिया के पास नहीं है। प्राणमय कोश और मनोमय कोश के विकारों को एलोपैथिक, आयुर्वेदिक और होम्योपैथिक दवाएँ दूर करने में असमर्थ हैं।

कुछ हद तक शरीरोपचार से मानसोपचार हो सकता है, किन्तु यह सीमित है। मन को नियन्त्रित करने के लिए और पुन: मन की शक्ति उर्ध्वगामी करने के लिए दवाएँ काफी नहीं हैं।

चूँकि बीमारियों का कारण प्राय: मानसिक होता है, इसलिए मन में ही बीमारियों का संस्कार पहले आरोपित होता है। अत: मन का ही उपचार सब दवाओं से पहले होना चाहिए।

अजपा का प्रयोग इसलिए बीमारियों में किया जाना चाहिए। रोग होने के पूर्व अभ्यास होना ही चाहिए, किन्तु रोग होने पर भी अजपा का अभ्यास सबसे पहले शुरू कर देना चाहिए। जो संसारी और गृहस्थ मनस-तत्त्व को नहीं पहचानते और आलोचना करते हैं, उन्हें सबसे पहले अजपा के प्रायोगिक क्षेत्र में उतरना चाहिए। अजपा का ठीक ढंग से और पूरी तत्परता के साथ अभ्यास करने से यह कभी नहीं हो सकता है कि रोग अच्छा न हो। मात्र अजपा के अभ्यास से यदि चाहे तो मनुष्य काल और मृत्यु को जीत सकता है। काल को जीतने का अर्थ होता है, काल से प्रभावित न होना और मृत्यु को जीतने का अर्थ होता है, इच्छा-मृत्यु प्राप्त करना।

इसलिए अजपा का प्रयोग एक उपचार के रूप में भी होना चाहिए। उपचार के रूप में मैं अजपा का असंख्य बार प्रयोग कर चुका हूँ। बड़ी और छोटी अनेक बीमारियों में मैंने अजपा का अभ्यास करा कर उन्हें दूर कराया है।

पागलपन और हिस्टीरिया में मैंने अजपा के प्रयोग कई बार किए हैं। मैंने उच्च रक्तचाप और थ्राम्बोसिस में अजपा का प्रयोग कराया है और सभी जगह मुझे सफलता ही मिली है। जिसने भी तत्परता से थोड़ा भी अभ्यास किया, उसे सफलता मिली और वह चंगा हो गया। अजपा के अभ्यास से सैकड़ों ने जीवन में नया मोड़ पाया है।

तर्क करने वाले प्रश्न करेंगे कि एक ही साधन सब बीमारियों में कैसे। तो उत्तर यह है कि शरीर की बनावट और तत्त्व एक ही हैं, प्राणशक्ति के द्वारा ही शरीर चलता, बोलता, खाता-पीता और सोता है। यह प्राणशक्ति ऑक्सीजन के द्वारा सारे शरीर में संचारित होती है। मनुष्य दवाइयों से नहीं, बल्कि प्राणशक्ति के प्रवाह से चंगा होता है। अजपा के द्वारा प्राणशक्ति अधिक मात्रा में शरीर में प्रविष्ट होती है। ऑक्सीजन के द्वारा प्राणशक्ति अधिक और सभी अंगों में प्रवाहित होती है और रक्त नाड़ियों में उनके ठहराव का समय अधिक होता है। प्राणशक्ति कहते हैं लाइफ करेंट को,

इस लाइफ करेंट को शरीर में ज्यादा से ज्यादा भरने से मनुष्य की आयु लम्बी होती है।

प्राणशक्ति हर एक आदमी के शरीर में बहती रहती है। जिनमें बहुत अधिक मात्रा में यह शक्ति होती है, वे बहुत स्वस्थ, प्रसन्न, शान्त, सौम्य दिखते हैं। उनके पास बैठने से रोगियों को बहुत आराम मिलता है। रोगी के शरीर में प्राणशक्ति आवश्यकता से बहुत कम होती है, इसलिए वे दुर्बलता और पीड़ा का अनुभव करते हैं। जिनमें जितनी अधिक शक्ति होगी, वे बड़ी पीड़ा और दु:ख को भी शरीर को कम से कम हानि पहुँचाकर सह लेते हैं।

तो शरीर में जीवनी शक्ति को आपूरित करने का रास्ता है, 'अजपा' का नित्य अभ्यास। अजपा का अभ्यास अधिक से अधिक मात्रा में करने से जीवनी शक्ति का संग्रह और संचार होता है। यह जीवनी शक्ति ही रोगों में उपचार का काम करती और प्राणदान देती है।

अजपा मन का भी इलाज करता है। मन को नियंत्रित करने और सूक्ष्म में प्रवेश कराने का एक ही द्वार है, 'अजपा-नामक श्वासों की सुरंग'।

चेतना, प्राण और मन को संयुक्त करने से अजपा बनता है। अजपा प्राणों के सहारे चलता है। प्राण से मन संचालित होता है। इसलिए अजपा करने से मन का स्वत: संयम भी होता है और उसके तत्त्व भी बदलते हैं। अजपा से मन और चित्त का पुराना तत्त्व एकदम बदल जाता है और नये तत्त्व आपूरित होते हैं।

पुन: अजपा से मनुष्य की सुषुम्ना नाड़ी में गर्मी पैदा होती है, जो हमारी शक्ति-केन्द्रों का संग्रहागार है। शरीर के सभी शक्ति-केन्द्र और स्नायुओं के जाल सुषुम्ना से निकलते हैं। लम्बी श्वास लेने में सुषुम्ना प्रवाहित होती है, कुण्डलिनी का उत्थान होता है, किन्तु शरीर से सम्बन्धित होने पर इसका अधिक झुकाव आत्मानुसन्धान की तरफ होता है।

अजपा जप द्वारा पारिवारिक कलह का निवारण

प्राय: घरों में लड़ाई-झगड़े, वैमनस्य, ईर्ष्या, निन्दा, लोभ इत्यादि के कारण भी लोग दु:खी रहा करते हैं। ये सब मानसिक विकार के कारण होते हैं। मानसिक विकार मुख्य पाँच ही हैं; बाकी अन्य भावनाएँ केवल उनके ही रूपान्तर और प्रकारान्तर हैं। ये पाँच—काम, क्रोध, लोभ, मद और मोह ही हैं, जिसका प्रसंग पहले आ चुका है। यदि और अधिक सूक्ष्म दृष्टि से विचार

किया जाए तो केवल दो मुख्य वृत्तियाँ हैं जो सब व्याधियों की मूल हैं। वे हैं, राग और द्वेष। इसी से प्रेरित होकर मानसिक क्लेश उत्पन्न होते हैं। इन्हें समाप्त करने पर कुछ नहीं रह जाता।

इन्हें समाप्त करना या नियंत्रित करना न संभव है और न ही आसान। किन्तु इनके कारण उत्पन्न क्लेशों को अजपा के द्वारा दूर किया जा सकता है। समस्त पारिवारिक कलहों को दूर कर, गृहस्थ जीवन में ही आत्म-विकास की सारी साधनाएँ संभव हैं।

यदि आपका बच्चा कहना न माने, यदि पति-पत्नी में आपस में मेल की इच्छा रखते हुए भी न पटती हो, यदि सास-बहू में छत्तीस का आँकड़ा हो और यदि अपने अधिकारी से आप न चाहते हुए भी झगड़ा कर लेते हों, तो सर्वप्रथम उपचार यह है कि अजपा-जप का अभ्यास विधि के साथ शुरू कर दीजिए। सचाई और आशा के साथ छः महीने अभ्यास करने के बाद अजपा के पूर्व और अजपा की बाद की अवस्था की तुलना कीजिए।

सारांश

अजपा जप योग की एक प्रमुख एवं सरल क्रिया है। वास्तव में अजपा का अभ्यास क्रमशः चेतना का विकास करते हुए समाधि साधना के लिए करना चाहिए। इसकी सफलता के लिए अनुरक्त साधना अनिवार्य है। यदि सन्त-महात्माओं की वाणी पर हमें विश्वास है, तो उन्हें अपनाना ही होगा। आध्यात्मिक अनुशासन के संदर्भ में भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्‌गीता में कहा है– 'साधक को भोजन, कार्य एवं अभ्यास को व्यवस्थित करना चाहिए। शरीर, मन एवं इन्द्रियों को वश में करने के लिए यह स्वर्णिम नियम है।' इससे मन एवं हृदय का शुद्धिकरण होता है। अजपा-जप ऐसा ही साधन है, जिसके लिए नियमित अभ्यास एवं साहस की आवश्यकता है। साधना में कई ऐसे क्षण आते हैं जो साधक को निराश कर सकते हैं, परन्तु उसे हिम्मत न हारते हुए बढ़ते जाना चाहिए। साधना के मार्ग में प्रत्येक क्षण अमूल्य होता है। साधक को सावधान रहना चाहिए। एक क्षण भी चूक जाने पर उसकी साधना में विलम्ब हो जायेगा। इससे उसके अमूल्य श्रम एवं समय का व्यय होगा। अतः साधकों को बाधाओं से बिना डरे हर पल का उपयोग करने से ध्यान में सफलता मिलेगी, ज्योति दर्शन होंगे, जिससे सारा अज्ञान दूर हो जाएगा तथा वह सच्चिदानन्द में वास करेगा।

नोट

नोट

नोट



स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का जन्म उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा ग्राम (उत्तरांचल) में सन् 1923 की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को हुआ। उनमें बाल्यावस्था से ही आध्यात्मिक जीवन के प्रति झुकाव था और विलक्षण प्रतिभाएँ परिलक्षित होती थीं। 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने गुरु की खोज में घर छोड़ दिया। 1943 में उन्हें ऋषिकेश में अपने गुरु स्वामी शिवानन्द के दर्शन हुए। 12 सितम्बर 1947 को गुरु ने उन्हें परमहंस संन्यास में दीक्षित किया। वे 12 वर्ष गुरु की सेवा में रहे और आध्यात्मिक जीवन के हर आयाम में दक्षता प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने परिव्राजक संन्यासी के रूप में आठ वर्षों तक सम्पूर्ण भारत, अफगानिस्तान, बर्मा, नेपाल एवं श्रीलंका का भ्रमण किया। इस अवधि का उपयोग उन्होंने यौगिक तकनीकों को प्रतिपादित एवं परिष्कृत करने में किया, ताकि मानवता को कष्टों से त्राण मिल सके।

योग की प्राचीन पद्धति को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव होने पर उन्होंने 1956 में अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल एवं 1963 में बिहार योग विद्यालय की स्थापना की। अगले 20 वर्षों तक विश्व भ्रमण करते हुए उन्होंने योग की पताका विश्व के कोने-कोने में फहरा दी और बिहार योग विद्यालय को योग की एक अग्रगण्य संस्था के रूप में ख्याति दिलायी। उन्होंने योग, तंत्र एवं आध्यात्मिक जीवन पर अस्सी से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया।

'सत्यानन्द योग' एक ऐसी परम्परा बन गयी, जिसमें शास्त्रीय और अनुभवात्मक ज्ञान तथा आधुनिक दृष्टिकोण का सुन्दर समन्वय है। ग्राम्य-विकास की भावना से 1984 में उन्होंने दातव्य संस्था 'शिवानन्द मठ' की एवं योग पर वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से 'योग शोध संस्थान' की स्थापना की। सन् 1988 में उपलब्धियों के शिखर पर पहुँचकर उन्होंने सबकुछ त्याग दिया और क्षेत्र संन्यास लेकर परमहंस संन्यासी की जीवन पद्धति अपना ली। सन् 1989 में उन्हें रिखिया आने का दैवी आदेश हुआ, यहाँ उन्होंने एकान्तवास करते हुए उच्च वैदिक साधनाएँ कीं। सन् 1991 में अपने पड़ोसियों को सुविधाएँ उपलब्ध कराने का आदेश मिलने पर उन्होंने आश्रम को उस क्षेत्र के अभावग्रस्त ग्रामीणों की सहायता करने की अनुमति दी। सन् 1995 में उन्होंने वैश्विक सुख, शान्ति एवं समृद्धि का संकल्प लेकर बारह वर्षीय राजसूय यज्ञ आरम्भ किया और सन् 2007 में 'सेवा, प्रेम और दान' को अपनी मुख्य गतिविधि बनाने का आदेश देकर रिखियापीठ की स्थापना की घोषणा की।

स्वामी सत्यानन्द 5 दिसम्बर 2009 की मध्यरात्रि में अपने शिष्यों की उपस्थिति में महासमाधि में लीन हो गये।



SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

योग की सबसे सरल, परन्तु उच्च साधना है अजपा जप, जिसके द्वारा मनुष्य ईश्वर की अनुभूति प्राप्त कर सकता है। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने तंत्र-शास्त्र, क्रिया योग एवं उच्च साधनाओं में सम्मिलित अजपा जप को इस पुस्तक में अत्यंत ही सरल अभ्यासों द्वारा समझाया है। आजकल की अस्त-व्यस्त जीवनशैली के कारण मनुष्य शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ तो प्राप्त करना चाहता है, परन्तु कठिन यौगिक अभ्यासों को करना नहीं चाहता है। इस पुस्तक में दिए गए अभ्यासों के द्वारा साधक शारीरिक एवं मानसिक तनाव तो दूर कर ही सकता है, साथ-ही-साथ ये रोगोपचार, चेतना के विस्तार एवं संस्कारों के प्रकटीकरण के सशक्त माध्यम बन सकते हैं। मानसिक रोगों के उपचार, भावनात्मक संतुलन एवं शारीरिक शिथिलीकरण की यह पद्धति सभी प्रकार के अभ्यासियों के लिए सरल एवं उपयुक्त है। आध्यात्मिक लाभ एवं आत्मोत्थान के लिए प्रयासरत साधकों के लिए यह पुस्तक अनुकरणीय तथा उपयोगी है।



[bar code here]

ISBN : 978-93-81620-08-3